बेनीपुरी :: परिचय

जन्म-तिथि	अज्ञात, सम्भवत पौषसवत् १९५८, जनवरी १९०२ ई०
जन्म-स्थान	बेनीपुरी, थाना कटरा, जिला मुजफ्फरपुर, बिहार।
परिवार	पिता, श्री फूलवन्त सिंह। पितामह, श्री यदुनन्द सिंह। साधारण किसान। बचपन में ही माता-पिता का स्वर्गवास।
शिक्षा	अक्षरारम्भ, बेनीपुर। प्रार्थमिक शिक्षा, वशीपचरा, ननिहाल में। फिर भिन्न-भिन्न स्कूलो में अध्ययन करते हुए जब मैट्रिक में ही पहुँचे थे, असहयोग-आन्दोलन के कारण १९२० में शिक्षा का परित्याग।
साहित्य-प्रेम	तुलसीकृत रामचरित मानस के पठन-पाठन से साहित्य की ओर रुचि। कविता की ओर प्रारम्भिक प्रवृत्ति। प्राचीन काव्यो का स्वत अध्ययन। १५ वर्ष की उम्र में ही हिन्दी-साहित्य- सम्मेलन के विशारद। इसके पहले से ही पत्र-पत्रिकाओ में कवितायें।
पत्र-कारिता	१९२१—'तरुण भारत' (साप्ताहिक) के सहकारी सम्पादक। १९२२—'किसान मित्र' (साप्ताहिक) के सहकारी सम्पादक। १९२४—'गोलमाल' (साप्ताहिक) के सहकारी सम्पादक। १९२६—'बालक' (मासिक) के सम्पादक। १९२९—'युवक' (मासिक) के सम्पादक और सचालक। १९३०—'कैदी' (हस्तलिखित) का सम्पादन, हजारीबाग जेल में। १९३४—'लोक सग्रह' (मुजफ्फरपुर) और 'कर्मवीर' (खडवा) के कार्य-कारी सम्पादक। १९३५—'योगी' (साप्ताहिक) के सम्पादक। १९३७—'जनता' (साप्ताहिक) के सम्पादक। १९४२—'तूफान' (हस्तलिखित), हजारीबाग जेल में सम्पादन।

१९४६—'हिमालय' (मासिक) के सम्पादक, आचार्य शिवपूजन सहायजी के साथ।

१९४६—'जनता' (साप्ताहिक) के पुन सम्पादक।

१९४८—'जनवाणी' (मासिक), काशी के सम्पादक मडल में, आचार्य नरेद्रदेवजी के साथ।

१९५०—'नई धारा' और 'चूनू-मुन्नू' के प्रधान सम्पादक—(दोनो ही मासिक)

१९५१—'जनता' (दैनिक) के प्रधान सम्पादक।

पुस्तक-निर्माण

१९२५—(१) वगुला भगत (२) सियार पाँडे (३) विहारीसतसई की टीका (४) प्रेम (अनुवाद) (५) कविता-कुसुम (सग्रह)

१९२७-२८—(१) विद्यापतिकी पदावली (सटिप्पण) (२) विलाईमौसी (३) हिरामन तोता (४) आविष्कार और आविष्कारक (५) शिवाजी (६) गुरुगोविन्द सिंह (७) विद्यापति (८) लगटसिंह

१९३०-३२—(१) पतितो के देश में (२) फुटकल कहानियाँ, जो 'चिता के फूल' मे सग्रहीत हुई।

१९३५-३६—(१) साहस के पुतले (२) झोपडी से महल (३) रगविरग (४) वहादुरी की वाते (५) क्या और क्यो (ये दो पुस्तके अप्रकाशित) (६) दीदी (उपन्यास चार फार्म छपी, मूल प्रति अप्राप्य)

१९३७-३९—(१) लाल तारा (२) लाल चीन (३) जान हथेली पर (४) फलो का गुच्छा (५) पद-चिह्न (६) सतरगा धनुप (७) झोपडी का रुदन (कहानी सग्रह)

१९४०—(१) कैदी की पत्नी (२) लाल रूस (३) सात दिन (उपन्यास अप्रकाशित) (४) जोश (अप्रकाशित)

१९४१-४५—(१) माटी की मूरतें (२) अम्वपाली (३) रोजा लूक्जेमवुर्ग (४) रवीन्द्र-भारती (अप्रकाशित) (५) इकवाल (अप्रकाशित) (६) रूस की क्राति (७) टुलिप्स (अप्रकाशित)

१९४७—(१) जयप्रकाश जीवनी (२) जयप्रकाश

की विचार धारा (३) तथागत (४) चिता के फूल

१९४८-५०—(१) गेहूँ और गुलाब (२) नेत्रदान (३) सीता की माँ (४) नई नारी (५) सघमित्रा (६) मशाल (७) हवा पर (८) बेटे हो तो ऐसे (९) बेटियाँ हो तो ऐसी (१०) हमारे पुरखे (११) हमारे पडोसी (पीछे ये दो पुस्तके 'अमर कथायें' नाम से चार भागो मे प्रकाशित) (१२) पृथ्वी पर विजय (१३) प्रकृति पर विजय (१४) ससार की मनोहर कहानियाँ (१५) हम इनकी सतान हैं (१६) इनके चरण-चिह्नो पर (१७) अनोखा ससार (१८) अपना देश

१९५१—(१) पैरो में पख बाँध कर (२) कार्ल मार्क्स (३) अमर ज्योति (४) नया समाज (५) सुनिये!

१९५२—(१) पेरिस नही भूलती (२) उडते चलो, उडते चलो (३) अमृत की वर्षा (४) जीव-जन्तु

१९५३—इन पुस्तको पर काम हो रहा है—(१) जजीरे और दीवारे (२) मुझे याद है (३) विजेता (४) धरती की धडकनें (५) मेरी डायरी (६) नये-पुराने (७) कुछ मैं, कुछ वे!

जेल-यात्रा

१९३०—छ महीने की सजा, हजारीबाग जेल

१९३२—डेढ वर्ष की सजा, हजारीबाग और पटना कैम्पजेल

१९३७—तीन महीने की सजा, हजारीबाग जेल।

१९३८—दो दिन हाजत में—सीटी जेल, पटना जेल।

१९३९—दो सप्ताह की सजा—पटना जेल।

१९४०—एक वर्ष की सजा—हजारीबाग जेल।

(इसी दरम्यान एक मुकदमे के सिलसिले में छपरा जेल, सिवान जेल)

१९४१—छ महीने की सजा, हाजीपुर जेल, मुजफ्फर पुर जेल।

१९४२—डेढ साल की सजा, सीतामढी जेल।

१९४२—छ महीने भी सजा, मधुवनी जेल, दरभगा जेल।

माटी की मूरतें

अपने मामाजी

स्वर्गीय श्रीद्वारिकासिंहजी की

पावन स्मृति मे

ये माटी की मूरतें

जब कभी आप गाँव की ओर निकले होंगे, आपने देखा होगा, किसी बड़ या पीपल के पेड़ के नीचे, चबूतरे पर, कुछ मूरतें रखी हैं—माटी की मूरतें!

ये मूरतें—न इनमें कोई खूबसूरती है, न रंगीनी। फलतः बौद्ध या ग्रीक-रोमन मूर्त्तियो के हम शैदाई यदि उनमें कोई दिलचस्पी न लें,—उन्हें देखते ही मुँह मोड लें, नाक सिकोड लें, तो अचरज की कौन सी बात?

किन्तु इन कुरूप, बदशकल मूरतो में भी एक चीज है,—शायद उस ओर हमारा ध्यान नहीं गया। वह है जिंदगी! ये माटी की बनी है, माटी पर धरी है, इसीलिए, जिन्दगी के नजदीक है, जिन्दगी से शराबोर है। ये देखती है, सुनती है, खुश होती है, नाराज होती है; शाप देती है, आशीर्वाद देती है।

ये मूरतें न तो किसी आस्मानी देवता की होती है, न अवतारी देवता की। गाँव के किसी साधारण व्यक्ति—मिट्टी के पुतले—ने ही किसी असाधारण अलौकिक कर्म के कारण एक दिन देवत्व प्राप्त कर लिया, देवता में गिना जाने लगा और गाँव के व्यक्ति-व्यक्ति के सुख-दुःख का द्रष्टा-स्रष्टा बन गया!

मिट्टी के उन पुतलो की ये माटी की मूरतें! हाँ, ये देखती है, सुनती है; खुश होती है, नाराज होती है। खुश हुई,—संतान मिली, अच्छी फसल मिली, यात्रा में सुख मिला, मुकदमे में जीत मिली। इसकी नाराजी—बीमार पड गये, महामारी फैली, फसल पर ओले गिरे, घर में आग लग गई!

ये जिन्दगी के नजदीक ही नहीं है, जिन्दगी में समाई हुई है। इसलिए जिन्दगी के हर पुजारी का सिर इनके नजदीक आप ही आप झुका है। बौद्ध और ग्रीक-रोमन मूर्त्तियाँ दर्शनीय है, वन्दनीय है, तो, माटी की ये मूरतें भी उपेक्षणीय नहीं, आपसे हमारा निवेदन सिर्फ इतना है !

× × ×

आपने राजा-रानी की कहानियाँ पढी है, ऋषि-मुनि की कथायें बाँची है, नायको और नेताओं की जीवनियों का अध्ययन किया है ! वे कहानियाँ, वे कथायें, वे जीवनियाँ ! कैसी मनोरजक, कैसी प्रोज्ज्वल, कैसी उत्साहवर्द्धक ! हमें दिन-दिन उनका अध्ययन, मनन, अनुशीलन करना ही चाहिये।

किंतु, क्या आपने कभी सोचा है आपके गाँव में भी कुछ ऐसे लोग है, जिनकी कहानियाँ, कथायें और जीवनियाँ राजा-रानियो, ऋषि-मुनियों, नायको-नेताओं की कहानियो, कथाओं और जीवनियो से कम मनोरजक, प्रोज्ज्वल और उत्साहवर्द्धक नहीं। किन्तु शकुन्तला, वशिष्ट, शिवाजी और नेताजी पर मरनेवाले हम आप अपने गाँव की बुधिया, बालगोविन भगत, बलदेवसिंह और देव की ओर देखने की भी फुर्सत कहाँ पाते है ?

हजारीबाग सेंट्रल जेल के एकान्त जीवन में अचानक मेरे गाँव और मेरे ननिहाल के कुछ ऐसे लोगों की सूरते मेरी आँखों के सामने आकर नाचने और मेरी क़लम से चित्रण की याचना करने लगीं ! उनकी इस याचना में कुछ ऐसा जोर था कि अन्तत यह "माटी की मूरतें" तैयार होकर रही। हाँ, जेल में रहने के कारण बैजूमामा भी इनकी पाँत में आ बैठे और अपनी मूरत मुझसे गढवा ही ली।

मैं साफ कह दूँ, ये कहानियाँ नहीं, जीवनियाँ है ! ये चलते-फिरते आदमियो के शब्दचित्र है। जानता हूँ, कला ने उनपर पच्चीकारी की है, किन्तु मैंने ऐसा नहीं होने दिया कि रग-रग में मूल रेखायें

ही ग़ायब हो जायँ। मैं उसे अच्छा रसोइया नहीं समझता, जो इतना मसाला रख दे कि सब्ज़ी का मूल स्वाद ही नष्ट हो जाय!

कला का काम जीवन को छिपाना नहीं, उसे उभाड़ना है! कला वह, जिसे पाकर ज़िन्दगी निखर उठे, चमक उठे!

डरता था, सोने-चाँदी के इस युग में मेरी ये "माटी की मूरतें" कैसी पूजा पाती हैं? किन्तु, इधर इनमें से कुछ जो प्रकाश में आईं, हिन्दी-संसार ने उन्हें सिर-आँखो पर लिया! यह मेरी कलम या कला की करामात नहीं, मानवता के मन में मिट्टी के प्रति जो स्वाभाविक स्नेह है, उसका परिणाम है। उस स्नेह के प्रति मैं बार-बार सिर झुकाता हूँ और कामना करता हूँ, कुछ और ऐसी 'माटी की मूरतें' हिन्दी-संसार की सेवा में उपस्थित करने का सौभाग्य प्राप्त कर सकूँ।

दीवाली १९४६ — श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी

नवीन संस्करण

यह "माटी की मूरतें" सोने की मूरतें सिद्ध हुईं। छः साल में इसकी साठ हजार प्रतियाँ बिक चुकीं। इस नवीन संस्करण में एक मूरत और जोड़ दी गई है—रजिया की। क्रम में भी कुछ परिवर्त्तन किया गया है और पाठ में भी। इसे आदि से अन्त तक सचित्र भी कर दिया गया है। क्या मैं आशा करूँ, इस नये रूप में यह और भी पसंद की जायगी।

गंगादसहरा, १९५३ — श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी

रज़िया

कानो में चाँदी की वालियाँ, गले मे चाँदी का हैकल, हाथो में चाँदी के कगन और पैरो मे चाँदी की गोडाँई—भर वाँह की वूटेदार कमीज़ पहने, काली साडी के छोर को गले में लपेटे, गोरे चेहरे पर लटकते हुए कुछ वालो को सँभालने में परीशान, वह छोटी-सी लडकी जो उस दिन मेरे सामते आकर खडी हो गई थी—अपने वचपन की उस रज़िया की स्मृति ताजा हो उठी जव, मै अभी उस दिन अचानक उसके गाँव में जा पहुँचा !

हाँ, यह मेरे वचपन की वात है। मै कसाईखाने से रस्सी तुडा कर भागे हुए वछडे की तरह उछलता हुआ अभी-अभी स्कूल से आया था और वरामदे की चौकी पर अपना वस्ता-सिलेट पटक कर मौमी से छठ मे पके ठेकुए लेकर उन्हें कुतर-कुतर कर खाता हुआ ढेंकी पर झूला झूलने का मज़ा पूरा करना चाह रहा था कि उधर से आवाज़ आई—देखना, ववुआ का खाना मत छू देना—और उसी आवाज़ के साथ मैंने देखा, यह अजीव रूप-रग की लडकी मुझ से दो तीन गज आगे खडी हो गई।

मेरे लिए यह रूप-रग सचमुच अजीब था। ठेठ हिन्दुओ की बस्ती है मेरी और मुझे मेले-पेठिए मे भी अधिक नही जाने दिया जाता। क्योकि सुना है, बचपन मे मै एक मेले मे खो गया था, मुझे कोई औघड लिये जा रहा था कि गाँव की एक लडकी की नजर पडी और मेरा उद्धार हुआ। मै बाप-माँ का एकलौता—माँ, चल बसी थी, इस लिए उनकी इस एकमात्र धरोहर को मौसी आँखो मे जुगोकर रखती। मेरे गाँव मे भी लडकियो की कमी नही, किन्तु न उनकी यह वेश-भूषा, न यह रग-रूप! मेरे गाँव की लडकियाँ कानो मे बालियाँ कहाँ डालती और भरबाँह की कमीज भी उन्हे कभी नही पहने देखा। और, गोरे चेहरे तो मिले है, किन्तु इसकी आँखो मे जो एक अजीब किस्म का नीलापन दीखता, वह कहाँ? और, समूचे चेहरे की काट भी कुछ निराली जरूर—तभी तो मै उसे एकटक घूरने लगा!

यह बोली थी रजिया की माँ, जिसे प्राय ही अपने गाँव मे चूडियो की खँचिया लेकर आते देखता आया था। वह मेरे आँगन मे चूडियो का बाजार पसार कर बैठी थी और कितनी बहू-बेटियाँ उसे घेरे हुए थी। मुँह से भाव-साव करती और हाथ से खरीदारिनो के हाथ मे चूडियाँ चढाती वह सौदे पटाये जा रही थी। अबतक उसे अकेले ही आते-जाते देखा था, हाँ, कभी-कभी उसके पीछे कोई मर्द होता जो चूडियो की खाँची ढोता। यह बच्ची आज पहली बार आई थी और न जाने किस बालसुलभ उत्सुकता ने उसे मेरी ओर खीच लिया था। शायद वह यह भी नही जानती थी कि किसी के हाथ का खाना किसी के निकट पहुँचने से ही छू जाता है! माँ जब अचानक चीख उठी, वह ठिठकी, सहमी—उसके पैर तो वही बँध गये, किन्तु इस ठिठक ने उसे मेरे बहुत निकट ला दिया, इसमे सदेह नही!

मेरी मौसी झट उठी, घर मे गई और दो ठेकुए और एक कसार लेकर उसके हाथो मे रख दिये। वह लेती नही थी, किन्तु अपनी माँ के आग्रह पर हाथ मे रख तो लिया, किन्तु मुँह से नही लगाया! मैने कहा—खाओ न? क्या तुम्हारे घर मे ये सब नही बनते? छठ का व्रत नही होता? कितने प्रश्न—किन्तु सबका जवाब 'न' मे ही और वह भी मुँह से नही, जरा-सा गर्दन हिला कर। और, गर्दन हिलाते हिलाते ही चेहरे पर गिरे बाल के जो लटे हिल-हिल उठती, वह उन्हे परीशानी से सम्हालने लगती!

जब उसकी माँ नई खरीदारिनो की तलाश मे मेरे आँगन से चली

रज़िया भी उसके पीछे हो ली। मैं खाकर, मुँह धोकर, अब उसके निकट था और जब वह चली, जैसे उसकी डोर में बँधा थोडी दूर तक घिसटता गया। शायद मेरी भावुकता देखकर ही चूडिहारिनो के मुँह पर खेलने वाली अजस्र हँसी और चुहल में ही उसकी माँ बोली—बबुआजी, रज़िया से ब्याह कीजियेगा? फिर बेटी की ओर मुखातिब होती, मुस्कराहट में कहा—क्यो रे रज़िया, यह दुल्हा तुम्हे पसन्द है। उसका यह कहना, कि मैं मुडकर भागा। ब्याह? एक मुसलमानिन से? अब रज़िया की माँ ठठा रही थी और रज़िया सिमट कर उसके पैरो मे लिपटी थी, कुछ दूर निकल जाने पर मैंने मुडकर देखा।

× × ×

रज़िया, चूडिहारिन! वह इसी गाँव की रहनेवाली थी। बचपन मे इसी गाँव में रही और जवानी मे भी। क्योकि मुसलमानो में गाँव में ही शादी हो जाती है न? और, यह अच्छा हुआ—क्योकि बहुत दिनो तक प्राय ही उनसे अपने गाँव में ही भेट हो जाया करती थी!

मैं पढते-पढते बढता गया! बढने पर पढने के लिए शहरो में जाना पडा। छुट्टियो में जब-तब आता। इधर रज़िया पढ तो नही सकी, हाँ बढने मे मुझ से पीछे नही रही। कुछ दिनो तक अपने माँ के पीछे-पीछे घूमती फिरी। अभी उसके सिर पर चूडियो की खँचिया तो नही पडी, किन्तु, खरीदारिनो के हाथो मे चूडियाँ पिन्हाने की कला वह जान गई थी। उसके हाथ मुलायम थे, बहुत मुलायम—नई बहुओ की यही राय थी। वे इसी के हाथ से चूडियाँ पहनना पसन्द करती। उसकी माँ इससे प्रसन्न ही हुई—जब तक रज़िया चूडियाँ पिन्हाती, वह नई-नई खरीदारिने फँसाती।

रज़िया बढती गई। जब-जब भेंट होती, मैं पाता, उसके शरीर में नये-नये विकास हो रहे है। शरीर में और स्वभाव में भी। पहली भेंट के बाद पाया था, वह कुछ प्रगल्भ हो गई है—मुझे देखते ही दौडकर निकट आ जाती, प्रश्न पर प्रश्न पूछती। अजीब अटपटे प्रश्न? देखिए तो, ये नई बालियाँ, आपको पसद है? क्या शहरो मे ऐसी बालियाँ पहनी जाती हैं? मेरी माँ शहर से चूडियाँ लाती है, मैंने कहा है, वह इसबार मुझे भी ले चले। आप किस तरफ रहते है वहाँ? क्या भेंट हो सकेगी—वह बके जाती, मैं सुनता जाता! शायद जवाब की जरूरत वह भी नही महसूस करती।

फिर कुछ दिनो के बाद पाया, वह अब कुछ सकुचा रही है।

मेरे निकट आने के पहले वह इधर-उधर देखती और जब कुछ बाते करती, तो ऐसी चौकन्नी-सी कि कोई देख न ले, सुन न ले। एक दिन जब वह इसी तरह बाते कर रही थी कि मेरी भौजी ने कहा—देखियो री रजिया, बबुआ जी को फुसला नही लीजियो। वह उनकी ओर देखकर हँस तो पडी, किन्तु मैंने पाया, उसके दोनो गाल लाल हो गये है और उन नीली आँखो के कोने मुझे सजल-से लगे। मैंने ध्यान दिया, जब हमलोग कही मिलते है, बहुत-सी आँखे हमपर भालो की नोक ताने रहती है।

रजिया बढती गई, बच्ची से किशोरी हुई और अब जवानी के फूल उसके शरीर पर खिलने लगे है। अब भी वह माँ के साथ ही आती है, किन्तु पहले वह माँ की एक छायामात्र लगती थी, अब उसका स्वतत्र अस्तित्व है और उसकी छाया बनने के लिए कितनो के दिलो में कसमसाहट है। जब वह बहनो को चूडियाँ पिन्हाती है, कितने भाई तमाशे देखने को वहाँ एकत्र हो जाते है। क्यो? बहनो के प्रति भ्रातृभाव या रजिया के प्रति एक अज्ञात आकर्षण वहाँ लाता है उन्हे। जब वह बहुओ की हाथो में चूडियाँ ठेलती होती है, पतिदेव दूर खडे कनखियो से देखते होते है—क्या? अपनी नवोढा की कोमल कलाइयो को, या इन कलाइयो पर क्रीडा करती हुई रजिया की पतली उँगलियो को! और जैसे रजिया को इसमें रस मिलता है। पतियो से चुहले करने से भी वह बाज नही आती—बाबू, बडा महीन चूडियाँ है, जरा देखिएगा कही चनक न जायँ! पतिदेव भागते है, बहुएँ खिलखिलाती है, रजिया ठट्ठा लगाती है। अब वह पेशे अपने में निपुण होती जाती है!

हाँ, रजिया अपने पेशे में भी निपुण होती जाती थी। चूडिहारिन के पेशे के लिए सिर्फ यही नही चाहिए कि उसके पास रग-बिरग की चूडियाँ हो—सस्ती, टिकाउ, टटके से टटके फैशन की। बल्कि यह पेशा चूडियो के साथ चूडिहारिनो में बनाव-शृगार, रूप-रग, नाजोअदा भी खोजता है। जो चूडी पहननेवालियो को ही नही, उनको भी मोह सके, जिनकी जेब से चूडियो के लिए पैसे निकलते है, सफल चूडिहारिन वह! यह रजिया की माँ भी किसी जमाने मे क्या कुछ कम रही होगी—खँडहर कहता है, इमारत शानदार थी!

ज्यो-ज्यो शहर में रहना बढ़ता गया, रजिया से भेट भी दुर्लभ होती गई! और, एक दिन वह भी आया, जब बहुत दिनो पर उसे

अपने गाँव में देखा, पाया उसके पीछे एक नौजवान चूडियो की खाँची सिर पर लिये है! मुझे देखते ही वह सहमी, सिकुडी और मैने मान लिया, यह उसका पति है! किन्तु तो भी अनजान-सा पूछ ही दिया —'इस मजूरे को कहाँ से उठा लाई है रे?' 'इसी से पूछिए, साथ लग गया, तो क्या करूँ!' नौजवान मुस्कुराया, रज़िया बिहँसी, बोली— यही मेरा खाविन्द है मालिक!

खाबिन्द! बचपन की उस पहली मुलाकात मे उसकी माँ ने दिल्लगी दिल्लगी जो कह दिया था, न-जानें, वह बात कहाँ सोई पडी थी? अचानक वह जगी और मेरी पेशानी पर उस दिन शिकन ज़रूर उठ आये होगे,मेरा विश्वास है। और, एक दिन वह भी आया, कि मै भी खाविन्द बना! मेरी रानी को सुहाग की चूडियाँ पहनाने उस दिन रज़िया आई और उस दिन मेरे आँगन में कितनी धूम मचाई इस नटखट ने—यह लूँगी, वह लूँगी और यें मुँहमाँगी चीज़ें नही मिली, तो "वह" लूँगी कि दुलहिन टापती रह जायँगी! हट-हट, तू बबुआ जी को ले जायगी, तो फिर तुम्हारा यह हसन क्या करेगा — भौजी ने कहा! यह भी टापता रहेगा बहुरिया, कहकर रज़िया ठठ्टा मारकर हँसी और दौडकर हसन से लिपट गई —ओहो मेरे राजा, कुछ दूसरा न समझना! हसन भी हँस पडा, रज़िया अपनी प्रेम-कथा सुनाने लगी। किस तरह यह हसन उसके पीछे पडा, किस तरह झझटें आई, फिर किस तरह शादी हुई और वह आज भी किस तरह छाया-सा उसके पीछे घूमता है —न जाने कौन-सा डर लगा रहता है इसे। और फिर, मेरी रानी की कलाई पकड कर बोली —मालिक भी तुम्हारे पीछे इसी तरह छाया की तरह डोलते रहे दुलहन! सारा आँगन हँसी से भर गया था! और उसी हँसी में रज़िया के कानो की बालियो ने अजीब चमक भर दी थी—मुझे ऐसा ही लगा था।

× × ×

जीवन का रथ खुरदुरे पथ पर बढता गया—मेरा भी, रज़िया का भी। इसका पता उस दिन चला, जब बहुत दिनो पर उससे अचानक पटना में भेंट हो गई। यह अचानक बात तो थी, किन्तु क्या इसे भेट कहा जाय?

मै अब ज्यादातर घर से दूर-दूर ही रहता। कभी एकाध दिनो के लिए घर गया, तो शाम को गया, सुबह भागा। तरह-तरह की ज़िम्मेवारियाँ, तरह-तरह के जजाल। इन दिनो पटना

मे था, यो कहिये, पटना सीटी मे। एक छोटे-मे अखवार मे था, पीर-बावर्ची-भिस्ती की तरह। यो तो लोग समझते कि मै सपादक ही हूँ! उन दिनो न इतने अखवार थे, न इतने सपादक। इसलिए, मेरी वडी कदर है, यह मै जानता, जव कभी दफ्तर मे निकलता, देखता, लोग मेरी ओर, उँगली उठा के फुसफुसा रहे है। लोगो का मुझ पर यह ध्यान—मुझे हमेशा अपनी पद-प्रतिष्ठा का ख्याल रखना पडता!

एक दिन मैं चौक के एक प्रसिद्ध पानवाले की दुकान पर पान खा रहा था। मेरे साथ मेरे कुछ प्रशसक नवयुवक थे, एक-दो वुजुर्ग भी आकर खडे हो गये। हम पान खा रहे और कुछ चुहले चल रही थी कि एक वच्चा आया और वोला, वावू, वह औरत आपको वुला रही है!

औरत, वुला रही है, चौक पर! मै चौंक पडा, युवको में थोडी हलचल, वुजुर्गो के चेहरो पर की रहस्यमयी मुस्कान भी मुझसे छिपी नही रही। औरत! कौन? मेरे चेहरे पर गुस्सा था, वह लडका सिट-पिटा कर भाग गया!

पान खाकर जव लोग इधर-उधर चले, अचानक पाता हूँ, मेरे पैर उसी ओर उठ रहे है जिस ओर उस वच्चे ने उँगली से इशारा किया था। थोडी दूर आगे वढने पर पीछे देखा, परिचितो मे से कोई देख तो नही रहा है। किन्तु, इस चौक की शाम की रूमानी फिजा में किसी को किसी ओर देखने की कहाँ फुर्सत! मै आगे वढता गया और वहाँ पहुँचा, जहाँ उससे पूरव वह पीपल का पेड है। वहाँ पहुँच ही रहा था कि देखा, पेड के नीचे चवूतरे की तरफ से एक स्त्री वढी आ रही है और निकट पहुँच कर कह उठी — सलाम मालिक!

धक-सा लगा! किन्तु पहचानते देर नही लगी—उसने ज्यो ही सिर उठाया, चाँदी की वालियाँ जो चकम उठी।

रजिया! यहाँ कैसे? —मेरे मुँह से निकल पडा।

सौदा-सुलफ करने आई हूँ मालिक! अव तो नये किस्म के लोग हो गये न? अव लाह की चुडियाँ कहाँ किसी को भाती है। नये लोग, नई चूडियाँ। साज-सिगार की कुछ और चीजें भी ले जाती हूँ—पौडर, किलप, क्या-क्या चीजे न। नया जमाना, दुल्हनो के नये-नये मिज़ाज

फिर जरा-सा रुक कर वोली—सुना था, आप यही रहते हैं। कहाँ रहते हैं मालिक? मै तो अक्सर आया करती हूँ—

और जब तक पूछूं कि अकेली, हो या—कि एक अधवयस आदमी ने आकर सलाम किया। यह हसन था। लम्बी-लम्बी दाढियाँ, पाँच हाथ का लम्बा और मुस्तडा भी। देखिये मालिक, यह आज भी मेरा पीछा नही छोडता!—यह कहकर रजिया हँस पडी। अब रज़िया वह नही थी, किन्तु उसकी हँसी वही थी। वही हँसी, वही चुहल। इधर-उधर की बहुत-सी बातें करती रही और न जाने कब तक जारी रखती कि मुझे याद आया, मैं कहाँ खडा हूँ और अब मै कौन हूँ? कोई देख ले तो?

किन्तु, वह फुर्सत दे तब न? जब मैंने जाने की बात की, हसन की ओर देख कर बोली—क्या देखते हो, ज़रा पान भी तो मालिक को खिलाओ, कितनी बार हुमच-हुमच कर भर पेट ठूँस चुके हो बाबू के घर!

जब हसन पान लाने चला गया, रज़िया ने बताया, किस तरह दुनिया बदल गई है। अब तो ऐसे गाँव है जहाँ के हिन्दू मुसलमानो के हाथ से सौदे नही खरीदते। अब हिन्दू चूडिहारिने है, हिन्दू दरजी है। इसलिए रज़िया ऐसे खान्दानी पेशे वालो को बडी दिक्कत हो गई है। किन्तु, रज़िया ने यह खुशखबरी सुनाई, मेरे गाँव मे यह पागल-पन नही और मेरी रानी तो सिवा रज़िया के किसी दूसरे के हाथ से चूडियाँ लेती ही नही।

हसन का लाया पान खाकर जब मै चलने को तैयार हुआ, वह वह पूछने लगी, मेरा डेरा कहाँ है। मै बडे पेशोपेश में पडा। डरिये मत मालिक, अकेले नही आऊँगी, यह भी रहेगा! क्यो मेरे राजा—यह कह कर वह हसन से वह लिपटी पडी। पगली, पगली, यह शहर है, शहर; यो—हसन ने हँसते हुए उससे बाहे छुडाई और बोला—बाबू बालबच्चोवाली हो गई, किन्तु इसका बचपना नही गया।

और दूसरे दिन पाता हूँ, रज़िया मेरे डेरे पर हाज़िर है। मालिक, ये चूडियाँ रानी के लिए—कह कर मेरे हाथो मे चूडियाँ रख दी। मैंने कहा, तुम तो घर पर जाती ही हो, लेती जाओ, वही दे देना!

नही मालिक, एक बार अपने हाथ से भी पिन्हा देखिये? वह खिलखिला पडी। और, जब मैंने कहा—अब इस उम्र में? तो वह हसन की ओर देख कर बोली, पूछिये इससे, आज तक मुझे

यही चूडियाँ पिन्हाता है या नही ? और जव हसन कुछ शरमाया, वह वोली—घाघ है मालिक, घाघ, कैसा मुँह वना रहा है इस समय, लेकिन जव हाथ में हाथ लेता है ठठाकर हँस पडी इतने ज़ोर से कि मैं चौंक कर चारो तरफ देखने लगा !

× × ×

हाँ, तो अचानक उस दिन उसके गाँव में पहुँच गया ! चुनाव का चक्कर—जहाँ न ले जाय, जिस औघट-घाट पर न खडा कर दे। नाक में पेट्रोल के धुएँ की गन्ध, कान में साँय-साँय की आवाज़, चेहरे पर गर्द-गुवार का अम्वार — परीशान, वदहवास, किन्तु उस गाँव में ज्यो ही मेरी जीप घुसी, मैं एक खास किस्म की भावना से अभिभूत हो गया !

यह रज़िया का गाँव है, यहाँ रज़िया रहती थी ! किन्तु क्या आज मैं यहाँ यह भी पूछ सकता हूँ कि यहाँ कोई रज़िया नाम की चूडिहारिन रहती थी, या है ? हसन का नाम लेने में भी शर्म लगती थी। मैं वहाँ नेता वन कर गया था ! मेरा जय-जयकार हो रहा था, कुछ लोग मुझे घेरे खडे थे, जिसके दरवाज़े पर जाकर पान खाऊँगा, वह अपने को वडभागी समझेगा ! जिससे दो वाते कर लूँगा, वह स्वय चर्चा का एक विषय वन जायगा। इस समय मुझे कुछ ऊचाई पर ही रहना चाहिए !

जीप से उतर कर लोगो से वातें कर रहा था, या यो कहिये कि कल्पना के पहाड पर खडे हो कर एक आनेवाले स्वर्ण-युग का सदेश लोगो को सुना रहा था, किन्तु दिमाग में कुछ गुत्थियाँ उलझी थी। जीभ अभ्यासवश एक काम किये जा रही थी, अन्तर्मन कुछ दूसरा ही तान-वाना वुन रहा था। दोनो में कोई तारतम्य न था, किन्तु इसमें से किसी एक की गति में भी वाधा क्या डाली जा सकती थी ?

कि अचानक, लो यह क्या ? वह रज़िया चली आ रही है ! रज़िया ! वह वच्ची ! अरे, रज़िया फिर वच्ची हो गई ? कानों में वे ही वालियाँ, गोरे चेहरे पर वे ही नीली आँखें, वही भर बाँह की कमीज़, वे ही कुछ लटें जिन्हें सम्हालती वढी आ रही है। वीच में चालीस-पैंतालीस साल का व्यवधान ! अरे, मैं सपना तो नही देख रहा ? दिन में सपना ? वह आती है, गव्वर ऐसी भीड में घुस कर

मेरे निटक पहुँचती है, सलाम करती है और मेरा हाथ पकड कर कहती है—चलिए मालिक, मेरे घर !

मै भौचक्का, कुछ सूझ नही रहा, कुछ समझ में नही आ रहा ! लोग मुस्करा रहे हैं ! नेताजी, आज आपकी कलई खुल कर रही ! नही, यह सपना है कि, कानो में सुनाई पडा, एक कह रहा है—कैसी शोख लडकी ! और दूसरा वोलता है—ठीक अपनी दादी जैसी ! और तीसरे ने मेरे होश की दवा दी—यह रज़िया की पोती है वावू ! वेचारी वीमार पडी है ! आपकी चर्चा अक्सर किया करती है ! वडी तारीफ करती है ! वावू, फुर्सत हो तो जरा देख लीजिए, न जाने वेचारी जीती है या .

मै रज़िया के आँगन में खडा हूँ। ये छोटे-छोटे साफ-सुथरे घर, यह लिपा-पुता चिक्कन-ढुरढुर आँगन। भरी-पूरी गृहस्थी—मेहनत और दयानत की देन ! हसन चल वसा है, किन्तु अपने पीछे तीन हसन छोड गया है। वड़ा वेटा कलकत्ता कमाता है, मँझला पुश्तैनी पेशे में लगा है, छोटा शहर में पढ रहा है। यह वच्ची, वडे वेटे की वेटी ! दादा का सिर पोते में, दादी का चेहरा पोती मे। हूवहू रज़िया—दूसरी रज़िया! यह दूसरी रज़िया मेरी ऊँगली पकडे आँगन से पुकार रही है—दादी, ओ दादी, घर से निकल, मालिक-दादा आ गये ! किन्तु पहली रजिया निकल नही रही ! कैसे निकले ? वीमारी के मैले-कुचैले कपडे में मेरे सामने कैसे आवे ?

रज़िया ने अपनी पोती को तो भेज दिया, किन्तु, उसे विश्वास न हुआ कि हवागाडी पर आनेवाला नेता अव उसके घर तक आने की तकलीफ कर सकेंगे ? और, जव सुना, मै आ रहा हूँ, तो वहुओ से कहा, ज़रा मेरे कपडे तो वदलवा दो—मालिक से कितने दिनो पर भेट हो रही है न ?

उसकी दोनो पतोहुएँ उसे सहारा देकर आँगन में ले आई। रज़िया—हाँ, मेरे सामने रज़िया खडी थी—दुवली-पतली-रूखी-सूखी। किन्तु जव नज़दीक आकर उसने 'मालिक सलाम' कहा, उसके चेहरे से एक क्षण के लिए झुर्रियाँ कहाँ चली गई, जिन्होने उसके चेहरे को मकडजाला वना रखा था। मैने देखा, उसका चेहरा अचानक विजली के वल्व की तरह चमक उठा और चमक उठी वे नीली

आँखे, जो कोटरो मे धम गई थी! और, अरे चमक उठी है आज फिर वे चाँदी की वालियाँ और देखो, अपने को पवित्र कर लो, उसके चेहरे पर फिर अचानक लटक कर चमक रही है वे लटे, जिन्हे समय ने धो-पोछ कर शुभ्र-श्वेत वना दिया है!

बलदेव सिंह

टूटे हुए तारे की तरह एक दिन हमने अचानक अपने बीच में आकर उसे धम्म-से गिरता हुआ पाया—ज्योतिर्मय, प्रकाशपुज, दीप्तिपूर्ण! और, उसी तारे की तरह एक क्षण प्रकाश दिखला, हमें चकाचौंध में डाल, वह हमेशा के लिए चलता बना। जिस दिन वह आया, हमें आश्चर्य हुआ, जिस दिन वह गया, हम स्तभित रह गये!

पूस की भोर थी। खलिहान मे धान के बोझो का अम्बार लगा था। उनकी रखवाली के लिए जो कुटिया बनी थी, उसके आगे धूनी जल रही थी। खेत में, खलिहान पर, चारो ओर हल्का कुहासा छाया हुआ था, जिसे छेदकर आने में सूरज की बालकिरणो को कष्ट हो रहा था। काफी जाडा था; धीरे-धीरे ठढी हवा सनक कर कलेजे को हिला जाती। सब लोग धूनी को घेरे हुए थे, जिसकी लपट खतम हो चुकी थी, हाँ, लाल अगारे चमक रहे थे। ज्यो-ज्यो अगारे पर राख की पर्त पडती जाती, हम नजदीक-से-नजदीक सिमटते जाते, मानो हम उन्हें कलेजे में रखना चाहते हो। काफी निस्तब्धता थी। दौनी

के लिए, खलिहान के बीचोबीच, जो बाँस का खम्भा गडा था, उसके धान के सीसो वाले झब्बेदार सिरे पर एक काला भुजगा पछी बैठा, कभी-कभी चीखकर, उस निस्तब्धता को भग करने की तुच्छ चेष्टा कर रहा था।

इसी समय, एक नौजवान आकर, दूर से ही मेरे मामाजी को देखकर, चिल्ला उठा—"पा-लागी, चाचाजी!" हम सबका ध्यान उसकी ओर गया। एक गभरू जवान—अभी मूंछ की मसें भीग रही। रग गोरा, जिसपर बाल-किरणो ने सोना-सा पोत रखा था। दाहिने हाथ में बाँस की लम्बी लाल लाठी—बडी सजीली, घने पोरवाली, गाव-दुम-सी उतारवाली! बाये हाथ में लोटा लिये—वह शौचादि से लौट रहा था। बादामी रग का, मोटिये का जो लम्बा खलीता कुर्ता पहन रखा था उसने, उसके भीतर से उसके शरीर का गठीलापन और सौन्दर्य फूट पडता था।

"ओ, बलदेव, कब तुम आये? बहुत दिनो पर दिखाई दिये। पूरब कमाते हो, खुश रहो, लेकिन हमलोगो को भी तो मत भूलो, शायद दो बरस पर आये हो"—योही मामाजी ने उससे पूछताछ की। बडी आजिज़ी से उसने क्षमा माँगी, फिर बोला—"चाचाजी, अब सोचा है, यही रहूँगा। बहुत दुनिया देखी, मन कही न लगा। ननिहाल से भी जी ऊब गया, यह पुस्तानी जमीन जैसे डोर लगाकर खीचती रहती है। इसलिये आया हूँ घर बसाने। घर तैयार कर मैया को भी ननिहाल से ले आऊँगा। सोचता हूँ, अब आपलोगो की सेवा में ही जिन्दगी गुजार दूँ।"

नवयुवको को जब मालूम हुआ, बलदेवसिह यही बसेगे, उनके आनन्द का ठिकाना न रहा। बलदेवसिह के पिता भरी जवानी में मरे, बलदेवसिह तब छोटे-से बच्चे थे। उनकी माँ उन्हे लेकर मायके चली गई और तब से वह बेचारी वही है। जवान होने पर बलदेव पूरब जाने लगे, वहाँ बगाल में किसी राजा के दरबार में पहलवानी करते। काफी पैसे मिले। अब उन्हे अपनी पुश्तानी ज़मीन की याद आई थी।

वह घर जो खडहर बना था, फिर एक बार आबाद हुआ!

गाँव मे उनके आने से नई जान आ गई—जान आ गई, जवानी आ गई। अखाडा खुद गया, उसमें कुश्तियाँ होने लगी। भोर में कुश्तियाँ, शाम को पट्टेबाजी, गदका, लाठी चलाना आदि। पेठिया

के दिन बलदेवसिंह जब शिष्यमडली के साथ सदल-बल चलते, देखते ही बनता।

आगे-आगे बलदेवसिंह जा रहे है। पैरो मे बूट, जो बगाल से ही लाये थे। कमर में धोती, जिसे कच्छे की तरह, अजीब ढग से पहनते। वह घुटनो से थोडा ही नीचे जाती, घुटनो के नजदीक उसमें चुन्नन होती, जिससे चलते समय लहराती रहती। लम्बा कुर्ता—गर्दन की बगल में जिसमे एक ही घुडी। कुर्ता काफी घेरदार, बाँह का घेरा इतना बडा कि हाथी का पैर समा जाय उसमे। गले मे सोने की छोटी-छोटी ठोस तावीजो की पक्ति—जिनमे कुछ चौकोर और कुछ चद्राकार। सिर पर कलँगीदार मुरेठा, जिसका एक लबा छोर उनकी ीठ पर झूलता। हाथ मे सरसो का तेल और कच्चा दूध पिला-पिलाकर पोसी-पाली गई लाल-सुर्ख लम्बी लाठी , या कभी-कभी वह मोटा डडा, जिससे कुर्त्ते के नीचे कमर मे लटकती हुई गँडासे की फली बात-की-बात में फिट करके वह साक्षात् यम बन जा सकते थे! अपनी ताकत और हिम्मत का उन्हें इतना विश्वास था कि झूमते हुए, सिर ऊँचा किये, छाती ताने, शेर की तरह चलते। आगे-आगे वह, पीछे-पीछे इसी बन-ठन और रूपरग में उनकी शिष्यमडली होती। रास्ते में, पेठिया में, उनका सुन्दर सुडौल शरीर देखकर किसकी आँखे न निहाल हो उठती?

शरीर में इतनी ताकत, लेकिन स्वभाव कैसा—बच्चो-सा निरीह, निर्विकार! चेहरे पर हमेशा हँसी खेलती रहती, सबके साथ नम्रता से पेश आते, कभी गुस्सा उनमे देखा नही गया, सबकी सेवा करने को सर्वदा प्रस्तुत! बच्चे उन्हे देखते ही लिपट जाते, बूढो की आँखें हमेशा उनपर आशीर्वाद बरसाती, जवानो के तो वह देवता बन चुके थे!

× × ×

उन दिनो हिन्दू-मुसलमानो की तनातनी नही थी। दोनो दूध-चीनी की तरह घुले-मिले थे। हिन्दू की होली मे मूसलमानो की दाढी रँगी होती, मुसलमानो के ताजिये मे हिन्दू के कधे लगे होते।

ताजिये के दिन थे। मेरे गाँव मे भी ताजिया बना था, यद्यपि एक भी मुसलमान वहाँ नही। एक बूढे मौलवी साहब बुलाये गये थे, जो उसके धार्मिक कृत्य कर लेते। हमे सरोकार था सिर्फ ताज़िये के निकट हो-हल्ला मचाने से। शाम हुई, जल्द-जल्द खा-पीकर सब लोग

एकत्र हुए। ताशे बज रहे, लकडी खेली जा रही, गदके भाँजे जा रहे, पट्टेबाजी हो रही। लाठियो के खेल, तरह-तरह के शारीरिक करतब। औरते और बच्चे मर्सिया के नाम पर शोर मचा रहे। खेलकूद में आधी-आधी रात बीत जाती।

ताजिये के 'पहलाम' का दिन आया। गाँव मे दूर राजपूतो की एक बस्ती में 'रन' सजता। वही जवार-भर के ताजिये इकठ्ठे किये जाते। लोगो की अपार भीड—तरह-तरह के रगीन कपडो की चकमक, बूढे-जवान, बच्चे-औरते। तरह तरह के मारू बाजे बज रहे, मर्सिये की मीठी धुन मे 'या अली' का गगन-भेदी स्वर! दिशाये काँपती, आसमान थर्राता, कलेजे उछलते। जवार-भर के जवानो का तो यही दिन था, बन-ठन के आये हुए है। कही कुश्तियाँ हो रही कही मेढे लडाये जा रहे है। कही लाठी, गदके और लकडी मे हाथ की करामाते दिखाई जाती। देखते-देखते दर्शको का दल दो मतो में विभाजित हो जाता, कोई एक को शाबाशी देता, कोई दूसरे को। दोनो अपने-अपने 'हीरो' की विजय चाहते। कभी-कभी इस वीर पूजा के चलते ललकारे लग जाती, आँखे लाल हो उठती, भुजायें फडकने लगती, मालूम होता, अब मुठभेड होकर ही रहेगी। किन्तु प्राय इस भावना पर बुद्धि की विजय होती, थोडी देर मे समुद्र का ज्वार शात हो जाता। फिर आँखो में रस, होठो पर हँसी।

हम लोग भी अपना ताजिया लिये रन पर पहुँचे थे।

एक जगह मेंढे लडाये जा रहे थे, मै उसी को देख रहा था। मेंढो की लडाई—वाह, क्या कहना! ये छोटे, झबरीले जानवर—जो अपने मालिको के पीछे सुधुआ बने फिरते, एक दूसरे पर किस तरह टूट पडते! इनके सीग जब टकराते, जोर के शब्द के साथ जैसे धुँआ-सा उठ जाता! टक्कर-पर-टक्कर—जब तक उनमें से एक गिर न पडे, या वे अलग-अलग पकड न लिये जायँ। लडने के पहले लाल मिर्च उनके मुँह में रखकर जैसे उन्हे और भी उत्तेजित कर दिया जाता। मै मस्त-मगन हो यह मेंढा-लडान देख रहा था—कि

कि, एकाएक बडे जोरो का हो-हल्ला हुआ। सभी लोग एक ओर दौडे जा रहे है। और, वहाँ लाठियो की खटाखट जारी है। यह खटाखट खेल की नही है, कई सिरो से खून के फव्वारे छूट रहे है!

और यह, बीच में, कौन है? बलदेव सिंह!—पुराने, हँसमुख,

रसीले वलदेव सिह नही। वलदेव सिह—साक्षात भीम वने हुए! आँखो से अँगारे झड रहे। सिर पर जो एक लाठी लगी थी, उससे खून निकलकर, ललाट होते, भौं के ऊपर जमकर वह एक लोदा-सा वन गया था। दोनो हाथो से लाठी पकडे वह ज़ोरो से चलाये जा रहे। जिस ओर इस रूप मे निकल जाते, हडकम्प मच जाता! देखिये—यह आदमी उनकी ओर लाठी सम्हाले वढा, उसे देखते ही खडे हो गये, उसने लाठी चला ही तो दी। झट अपनी लाठी के दोनो छोर दोनो हाथो से पकडकर अपने सिर के ऊपर ले गये। उसकी लाठी की चोट इसी पर ठॉय से आकर लगी—दूसरी वार, तीसरी वार। वार-वार वार व्यर्थ जाता देख, वह भागा। किन्तु, अव वलदेवसिह की वारी है—वलदेवसिह की एक लाठी, और वह ज़मीन पर चक्कर खाता गिर पडा! अरे, यह क्या होने जा रहा है? चारो ओर हाहाकार मचा था, भगदड फैल गई थी। अव वहाँ महाभारत मचकर रहेगा, सव अनुमान कर रहे थे। कौन, किसको, क्या कह-कर समझाये? कौन किसको सुनने जा रहा था? फिर, विना वलदेव सिह को शान्त किये, शान्ति क्या आ सकती थी?

झट हमारे वूढे मामाजी आगे वढे। चिल्लाकर कहा—"वल-देव!" बलदेव सिह को जैसे थरथरी वॅध गई। पैर जम रहे, हाथ रुक गये। किन्तु तुरत सम्हलकर वह वोले—"चाचाजी, आप मत रोकिये, इन लोगो को लाठी का घमड हो गया है। मै जरा वता देना चाहता हूँ, लाठी क्या चीज़ है!" उनकी सॉस ज़ोर-ज़ोर से चल रही थी, गुस्से मे वाते टूट-टूटकर निकलती। सचमुच, वलदेव सिह का इसमे कोई हाथ नही था, उन्हे लाचार कदना पडा था। एक जोडी कुश्ती लडी जा रही थी। दोनो पहलवान वलदेव सिह से अप-रिचित थे। उनमे से एक ने 'फाउल-प्ले' करना चाहा। वलदेव ने अलग से ही रोका, मना किया—"ऐसा करना मुनासिव नही।" वस, इनकी वात सुनते ही उसके पक्षवाले इनपर विगडे, गुर्राये, क्योकि वे लोग लाठी चलाने में इस जवार मे सरगना समझे जाते थे। उन्हे घमड था कि उनके सौ खून माफ है। किन्तु, वलदेवसिह धौंस को कहाँ वर्दाश्त करनेवाले? 'वातहि वात करख वढि आई' और उसका नतीजा यह!

खैर, मामाजी के पडने से वलदेवसिह शान्त हुए। किन्तु, अव तो उनकी विजय हो भी चुकी थी। मैदान उनका था। उनकी शिष्य-मडली

के साथ हम किस तरह शान से उन्हें घर लाये!—हम आज विजयी थे, हमारा गाँव विजयी था!—मानो, राम लका-विजय कर अयोध्या पहुँचे थे।

× × ×

अगर शेरशाह या शिवाजी के दिन होते, तो वलदेव सिंह फौज में भर्ती हुए होते और सिपाही से होते-होते सूवेदार तक हो गये होते, इसमे तो कोई शक नही। सूरत-शकल, वल-हिम्मत, सव कुछ उनमें थे, जो सामन्तशाही के उस युग मे उन्हे अच्छे-से-अच्छे फौजी पद पर पहुँचा देते। उस समय वलदेव सिंह किस शान से हमारे गाँव में आते? घोडे पर सवार—कलँगीदार पगडी, कडी-कडी मूछें, आगे-पीछे नौकर-चाकर। किन्तु अँगरेजी राज्य में यह कहाँ सम्भव था? हाँ, जो सम्भव था, वही हम देखते थे। वीरता अपने लिए कोई निकास का रास्ता तो वनानेवाली ही थी।

यह अजीव है हमारी वस्ती। चारो ओर राजपूतो और अहीरो का ठट्ट। राजपूतो को अगर राम की शान, तो ग्वालो में कृष्ण की यादवी आनवान। दोनो कौमो में जैसे खानदानी वैर चला आ रहा हो। छोटी-छोटी वात पर भी तनाव हो जाता, मूछें कडी हो उठती, आँखें लाल हो जाती और लाठियाँ चलकर रहती। दोनो कौमें दो गिरोह की हैसियत से लडती थी, तो गिरोह के अन्दर भी युद्ध जारी ही रहता था, भाई-भाई में, पडोस-पडोमी में। एक वित्ता जमीन के लिए, आम के एक फल के लिए, शीशम की एक डाल के लिए, खून के फव्वारे छूटते। ये युद्ध प्राय आकस्मिक होते। खेत की जुताई हो रही है, पेड के नीचे गपशप हो रही है, रास्ता चलते-चलते भी, लोगो में गुत्थमगुत्थी हो गई। किन्तु, कभी-कभी जम के भी लडाइयाँ होती। दोनो पक्ष से लोगो का 'विटोरा' होता—भाई-वद जुटते, कुटुम-कवीले के लोग आते, कुछ लोग पैसे पर भी वुलाये जाते। ऐसे मौके आने पर, हमारे जवार में कही भी कोई जमकर लडाई होती हो, तो वलदेव सिंह एक-न-एक पक्ष से ज़रूर वुलाये जाते और 'यतोधर्मस्ततोजय' की तरह ही, जिस तरफ वलदेव सिंह होते, उसी पक्ष की जय भी निश्चित होती।

एक वार इस तरह का एक धर्मयुद्ध देखने का मौका मुझे मिला। विसुनपुर में दो भाई क्षत्रिय थे। दोनो की दाँत-कटी रोटी थी, किन्तु आखिर दिल टूटा, तो एक दूसरे की जान के दुश्मन वन के

रहे। घर-द्वार, खेत-खलिहान, सबका बाँट-बखरा हो चुका था। दोनो एक आँगन में रहते भी दो दुनिया के जीव थे।

सयोग से, उस साल, एक आम के पेड के लिए दोनो भाइयो मे तनातनी हो गई। वह लँगडा आम का पेड! —हमने जाकर देखा, फलो के गुच्छो से लदी उसकी डाल-डाल जैसे ज़मीन छूने को ललक रही हो। हरे-हरे पत्ते उन सुफेदी लिये हुए आमो के गुच्छो मे न जाने कहाँ छिप रहे थे। काफी पुराना पेड था। खूब फैल गया था। और साल भी अच्छा फल देता था, किन्तु इस साल तो यह द्रौपदी की चीर बनकर महाभारत मचाने आया था! फिर, यह ललचाने वाला वेश वह क्यो न धारण कर ले?

कहते हैं, यह पेड बँट चुका था। छोटे भाई की बाँट में पडा था, जो कई साल से उसके फल का उपभोग कर रहा था। किन्तु बडे भाई के लडके ने हिसाब लगाकर देखा—यह आम तो मेरे हिस्से का है, धोखे से चाचाजी को मिल गया है। पेडो की गिनती, खतियान, सबको वह अपने पक्ष मे पेश करता।

किन्तु यहाँ खतियान से क्या होनेवाला है? "अगर तुम्हारा है, तो मर्द के बेटे हो, चढके आओ, फल तोड लो, खाओ। नही तो लुगाई के आँचल में मुँह रखकर सोओ।" सीधा तर्क, सीधी बात! इसके जवाब मे एक दिन तय कर दिया गया—"अगले सोमवार को डका बजा के हम फल तोडेंगे।—चुपके-चोरी जो काम करे, उसकी ऐसी-तैसी।" दिन तय हुआ, घडी तय हुई। दोनो तरफ से 'बिटोरा' होने लगा।

बलदेव सिंह के पास भी दोनो पक्षो से निमत्रण आने लगे। किन्तु, यहाँ तो कृष्णजी की टेक थी—जो खुद मेरे पास पहले आयगा उसका साथ दूँगा, यह ठिठी-पत्री क्या चीज़? बडे भाई का बेटा एक दिन घोडे पर पहुँचा। उससे बातचीत हो ही रही थी कि छोटे भाई भी पहुँचे। किन्तु तबतक बलदेव सिंह वचन दे चुके थे। दूसरे दिन सशिष्य-मडली वह विसुनपुर जा पहुँचे।

आज ही युद्ध होनेवाला है। लडाइयो से दूर ही रहना चाहिये, क्योकि प्राय निर्दोष भी उसमें फँस जाते, पिट जाते है—बडे-बूढो की इस आज्ञा की अवहेलना करके भी, कुतूहल-वश, मै दर्शको की उस भीड में शामिल हो गया, जो भिन्न-भिन्न दिशाओ से विसुनपुर जा रहे थे।

विसुनपुर उस दिन कुरुक्षेत्र बना हुआ था। बीच मे वह आम का पेड निश्चल निर्द्वन्द्व खडा है। दो ओर दोनो प्रतिद्वदियो की जमात जुडी है। भालो की फलियाँ धूप मे चमचम कर रही हैं, गँडासे दिन में भी चाँद-से चमक रहे हैं, फरसे परशुराम की याद दिलाते है, लाठियाँ उछल रही हैं—धामिन साँप की तरह। हाँ, तलवार की बहुत ही कमी थी, क्योकि उसपर अँग्रेजी राज की शनिदृष्टि पड चुकी थी। पर, लठैतो का कहना था, जो मार भाले और फरसे की होती है, वह तलवार की कहाँ? मै उनके तर्कों पर नही भूला था, मेरी विस्मय-विमुग्ध आँखें तो इन तैयारियो को देख रही थी। आमने-सामने उन लोगो के दल थे, दर्शको की भीड अगल-बगल में थी। रहरह-कर जय-ध्वनियाँ होती, ललकारे उठती। जब-तब आल्हा के कुछ कडखे भी सुनाई पडते।

बोलो, महावीर स्वामी की जय—कहकर दोनो पक्ष के योद्धा आम की ओर बढे। दर्शको के कलेजे धकधक करने लगे। अरे, कुछ देर में ही इनमें से कुछ मर चुके होगे, कुछ घायल पडे होगे! उफ, —मेरे मुँह से अच्छी तरह निकल भी नही पाया कि देखा, बडे भाई के पक्ष मे सबसे आगे बलदेव सिंह हैं। सबसे आगे बलदेव सिंह, उनके दोनो बाजू मे, मेरे ही गाँव के, उनके दो प्रधान शिष्य। बलदेव सिंह के सिर पर केसरिया रग का मुरेठा है। पैर में वही बूट। वही लम्बा-चौडा कुर्त्ता देह में, किन्तु, उसके घेरे को कमर के निकट एक पट्टी मे कस रखा है जिसमे फुर्ती से उछलने-कूदने मे दिक्कत न हो। उनकी धोती तो प्राय ही हाफ-पैंट का काम करती! चेहरा कैसा लाल-भभूका बन रहा था!

वह आगे बढे, आम के पेड के निकट पहुँचे। दोनो शिष्यो को इशारा किया, वे झट से पेड पर चढ गये और लगे आम की डालो को झकझोरकर निर्दयतापूर्वक फलो को गिराने। कोई माँ का लाल है, तो आवे—बलदेव सिंह गरज उठे, जिनकी ओर विपक्षी दल भौचक हो देख रहा था, जैसे वह भी दर्शको का ही दल हो। किन्तु उनकी इस चुनौती से मानो दुश्मन दल को आत्म-ज्ञान हो आया। फिर क्या था, दोनो दलो में गुत्थमगुत्थी शुरू हो चली। लाठियो की खटाखट, गँडासे की चुभ-चुभ और बर्छो की सनसनाहट से वायुमडल व्याप्त था। जयध्वनियो के साथ हाहाकार भी! किसी के सिर पर लाठी लगी—किस तरह खोपडी फूटकर टूक हो गई! वह गिर पडा

और खून की धारा वह रही है! किसी के पेट मे भाला चुभा—भाले की फली के साथ ही उसकी अँतडी बाहर आ गई है, अँतडी को दोनो हाथो से पकडे वह औंधा पडा है! जो हाथ एक मिनट पहले लाठी भाँज रहा था, गंडासे के एक ही वार ने उसे शरीर से अलग कर दिया है—वह रक्त-सिक्त जमीन पर अब भी रह-रहकर उछल जाता है! चारो ओर खून, चीख! मेरी तो आँखे बद हो गई।

आँखें जब खुली, तो सारा किस्सा खत्म है। बडे भाई का कब्ज़ा उस पेड पर हो चुका है। उस कब्ज़े मे बलदेव सिह का बडा हाथ था। मै अपने इस 'हीरो' को देखना चाहता था, किन्तु मालूम हुआ, पुलिस सुपरडट साहब, अब जब तमाशा खत्म हो चुका है, तशरीफ लाये है और लोगो ने बलदेव सिह को वहाँ से हटा दिया है॥ "बलदेवसिह! विजय तुम्हारी; अब तो रुपयो का खेल है, तुम हटो, —अब काम मेरा है"—बडे भाई के बडे साहबजादे ने कहा और चलते समय बलदेवसिह के गले मे एक मुहरमाला डाल दी।

× × ×

और उसी बलदेव सिह की यह लाश हमारे सामने पडी है!

सिर चूर-चूर—जैसे भुर्त्ता बना दिया गया हो! खून और धूल से शराबोर! जिस ललाट से तेज बरसता, उसी पर मक्खियाँ भिन्ना रही! एक आँख धँस गई, दूसरी निकल आई! होठ को छेदकर दाँत बाहर निकल रहे है!! नही, नही, यह हमारा बलदेव सिह नही हो सकता! बलदेव सिह की ऐसी गत?

एक गँडासा गहरा, कधे पर लगा है, वह बाँह लटक-सी गई है! दूसरी बाँह का पूरा पजा गायब! छाती वैसी ही तनी है—पहले से कुछ ज्यादा ही फूली हुई! किन्तु पेट की जगह सारी आँत निकल आई है! आँत का यह ढेर—कैसा भयानक, कैसा वीभत्स! नही, यह हमारा बलदेव सिह नही हो सकता!

पैरो को जैसे किसी ने, मकई के डठल-सा, पीट रखा है—आडे-तिरछे बन रहे! कही अजीब फूला हुआ, कही से खून बह रहा! बह रहा कहाँ?—बहाव तो कब न बन्द हो गया, अब तो काले-बने खून के धब्बे मात्र, जिनपर, हाँ, जिनपर मक्खियाँ भिन्ना रही! नही, यह हमारा बलदेव सिह हो नही सकता!

बलदेव सिह की ऐसी गत?

जिस शरीर को देख-देखकर आँखें नही अघाती थी—माएँ जिसे देखकर कहती—"मेरा वेटा ऐसा ही शरीर-धन पावे।" युवतियाँ मन ही मन गुनती—"धन्य है वह नारी जिसे ऐसा पति मिला, अगले जन्म मे, हे भगवान, मुझे वलदेव सिह की ही दासी वनाना।" वूढे देखते ही कहते—"वेटा शतजीव!" नौजवान जिसपर पागल हो विना मोल के गुलाम वने पीछे लगे फिरते—वही शरीर यह आज सामने पडा है! खून से लथपथ, धूल से भरा, क्षत-विक्षत, कुरूप-कुडौल वना—और, ये कम्वख्त मक्खियाँ जिनपर भिन्न-भिन्न कर रही!!!

किसने गत की इस शेरमर्द की ऐसी? किसकी माँ ने दूसरा शेर पैदा किया?

काश, किसी शेर ने यह हालत की होती! दो शेर लडते है, एक गिरता है। ऐसा ही होता है, इसके लिए अफसोस की क्या वात? वलदेव सिह तो ऐसी ही मृत्यु चाहते थे। उन्होने मौत की कव परवा की? मौत की आँखो मे आँखे डालकर मुस्कुराना—यही तो वलदेव सिह थे! क्षत्रिय की तरह युद्ध-क्षेत्र मे काम आऊँ, खेत रहूँ—यही तो उनकी कामना थी। यह कामना पूरी हुई, वह वीर गति पाकर, सूर्यमडल को भेदकर, अमरपुरी गये, इसमे तो कोई शक नही। किन्तु, जिन हाथो ने यह काम किया, क्या वे वीर के हाथ थे? शेर के पजे थे? नही, नही, कुछ सियारो ने—वुजदिलो और कायरो ने—छुपकर, घात लगाकर, वडे वुरे मौके पर, वडे वुरे ढग से, यह कुकर्म किया। उसकी कल्पना भी खून को खौला देती है, उत्तेजित कर देती है। उफ रे!

एक दिन, जवार के एक गाँव की एक विधवा मेरे गाँव में वलदेव सिह का नाम पूछते-पूछते आई! उस वेचारी के साथ एक छोटा वच्चा था, उसीका वच्चा। उस विधवा के अवलापन से और उस क्षत्रियकुमार के वचपन से फायदा उठाकर उसके पट्टीदारो ने उनका धन हडप लिया था। विधवा के कानो में वलदेव सिह की यशोगाथा पडी थी। वह तो अव हमारे जवार के घर-घर में, जवान-जवान पर, व्याप्त थे। विधवा पहुँची, वलदेव सिह के दरवार में अर्ज़ लगाने। जव पट्टीदारो को मालूम हुआ, वह वलदेवसिह के पास जा रही है, ताने देते हुए कहा था—"जा, नया शौहर वुला ला!" नया शौहर? क्षत्राणी को नया शौहर! वावू, मेरी लाज

रखो—सारी कहानी कहती हुई, वह बलदेव सिंह के पैरो पर गिर पडी। बलदेव ने बच्चे को कधे पर बिठाया, और चल पडे उस गाँव को!

जब गाँव से जा रहे थे, उन्हे मैंने देखा था। प्रणाम भाईजी, —मैंने कहा। चेहरे पर गुस्से की छाप स्पष्ट थी, किन्तु स्वभाविक हँसी हँसते हुए, आशीर्वाद दिया और कहा—एक अबला की रक्षा में जा रहा हूँ बबुआ, दो-चार दिनो में लौटता हूँ

बलदेवसिंह नही लौटे, लौटी है उनकी यह लाश!

वहाँ जाते ही उन्होने पट्टीदारो को चुनौती दे दी। दूसरे दिन विधवा के छीने हुए एक खेत पर हल भी चढा दिये। कोई नही बोला। कौन बोलता? एक के बाद दूसरे खेत विधवा के कब्जे में आने लगे, बहुत दिनो की गई अमराई पर अब उसका कब्जा था। उस बगीचे की एक लीची की डाल में झूला डालकर उस क्षत्रियकुमार को बलदेव सिंह झुलाते रहते। जो लोग विधवा के पट्टीदारो के डर से कल बोलते नही थे, अब वे ही बलदेवसिंह को शाबाशी देते, उस छोटे-से बच्चे से अपना पुराना नाता जोडते, क्योकि अब वह विधवा अबला नही थी। पिता खोकर उस बच्चे ने एक धर्म का पिता पा लिया था!

बलदेव सिंह के साथ उनके कुछ शिष्य भी गये थे। जब मामला पूरी तरह शान्त हो चला, उस गाँव के भी काफी लोग उनके पक्ष में आ गये, तब उन्होने एक-एक करके अपने शिष्यो को वहाँ से रवाना कर दिया। बेचारी विधवा पर ज्यादा खर्च का बोझ क्यो रहने दें? अन्तत, एक दिन तय किया, अब कल मै भी जाऊँगा।

और, वह कल वह नही देख सके!

उनकी आदत थी, बहुत सबेरे, बिल्कुल मुँहअँधेरे, शौच को जाते। गाँव से काफी दूर निकल जाते। जबतक तनाव था, अपने साथ किसी शिष्य को भी ले लेते, हथियार तो हमेशा पास में रखते ही——कम से कम हाथ में लाठी और कमर में गँडासे की फली, जिसे बात की बात में लाठी में लगा कर प्रलयकर बन जा सकते। किन्तु, उस दिन, निश्चिंत हो, वह सिर्फ लोटा ही लेकर निकल पडे। सारा गाँव भोर की सुख-निंदिया ले रहा था। किन्तु, उनके लिए मौत का फदा डाला जा चुका था।

एक नीची खाई में वह शौच के लिए बैठे ही थे कि उनके

सिर पर लाठी का एक वज्र-प्रहार हुआ। एक क्षण के लिए वह जैसे बेहोश हो गये, फिर, तुरत खडे हुए और सामने पडे लोटे को हाथ में उठाकर उसी से ढाल का काम लेने लगे। दूसरी लाठी—लोटे पर टन-सी आवाज! तीसरी लाठी—'फूल' का वह लोटा चूर-चूर हो रहा। फिर क्या था, लाठी, गँडासे, बर्छे—चारो ओर से बरसने लगे। बीच से उछलकर एक बार उस चक्रव्यूह से, अभिमन्यु की तरह, निकलने की कोशिश की, किन्तु फिर घिर गये, घेरे लिये गये, और आह! उस सन्नाटे के आलम मे, जब दुनिया भोर की सुख-निंदिया ले रही थी, उन कायरो, सियारो ने इस शेरमर्द की वह दुर्गति की, जो हम यह, सामने, देख रहे है!

एक भोर थी, जब मैंने बलदेव सिंह का वह रूप देखा था—आभामय, जीवनमय, यौवनमय! और, आज भी एक भोर है, जब हम उन्हे इस रूप मे देख रहे है!

उफ, आह!

सरजू भैया

सरजू मैया नही, सरजू भैया। यह हमारे गाँवो की विशेषता है कि कभी-कभी मर्द गगा, यमुना या सरजू हो जाते हैं। इस वारे में औरते ही सौभाग्यशालिनी है, प्राय उनके नामो में ऐसे अनर्थ नही होते।

हाँ, तो सरजू भैया! मेरे घर से सटा हुआ जो एक घर है—एक तरफ दो खपडैल मकान, एक तफर मट्टी की दीवार पर फूस के छप्पर, एक तरफ टट्टी के दो झोपडे, एक तरफ मकान नही, सिर्फ टट्टी खडा कर छोटा-सा आँगन निकाला हुआ—उसी घर के सौभाग्य-शाली मालिक है हमारे सरजू भैया। सरजू भैया को कोई छोटा भाई नही रहा, और मैंने प्रथम सतान के रूप में ही अपनी माँ की गोद भरी, अत हम दोनो ने परस्पर एक नाता जोड लिया है। वह मेरे वडे भाई है, मै उनका छोटा भाई।

गाँव के सवसे लम्वे और दुवले आदमियो में सरजू भैया की गिनती हो सकती है। रग साँवला, वगुले-सी वडी-वडी टाँगें, चिपजी

की तरह बडी-बडी बाँहे! कमर में धोती पहने, कधे पर अँगोछी डाले, जब वह खडे होते है, आप उनकी पसलियो की हड्डियाँ गिन लीजिए। नाक खडी, लम्बी। भवे सघन। बडी-बडी आँखें कोटरो मे धँसी। गाल पिचके। अग-अग की शिराएँ उभडी—कभी-कभी मालूम होता, मानो ये नसें नही, उनके शरीर को किसी ने पतली डोरो से जकड रखा है।

ऊपर की तस्वीर निस्सदेह किसी भुखमरे, मनहूस आदमी की मालूम होती है। किन्तु, क्या बात ऐसी है? सरजू भैया मेरे गाँव के चद जिंदादिल लोगो में से एक हैं। बडे मिलनसार, मज़ाकिया और हँसोड। वह दिल खोलकर जब हँसते हैं—शरीर भर में जो सबसे छोटी चीजें उन्हे मिली हैं—वे उनके पक्तिबद्ध छोटे-छोटे दाँत, तब बेतहासा चमक पडते है, अग-अग हिलने-डुलने लगते है—जैसे हर अग हँस रहा हो। और सरजू भैया के पास इतनी सपत्ति है कि वह खुद या अपने परिवार के ही पेट नही भर सकते, आगत-अतिथि की सेवा-पूजा भी मज़े में कर सकते हैं।

तो फिर यह हड्डियो का ढाँचा क्यो? मै जवाब में एक पुरानी कहावत पेश करूँगा—*काज़ीजी दुबले क्यो?—शहर के अदेशे से!*

हाँ, सरजू भैया की यह जो हालत है, वह अपने कारण नही, दूसरो के चलते। पराये उपकार के चलते उन्होने न सिर्फ अपना शरीर सुखा लिया है, बल्कि अपनी सपत्ति की भी कुछ कम हानि नही की है।

उनके पिता, जो गुमाश्ताजी कहलाते थे, मेरे गाँव के अच्छे किसानो में से थे। चौपार, साफ-सुदर उनका मकान और अच्छा-खासा बैठक-खाना था, जहाँ आज सरजू भैया की यह राममँडैया है। खेतीबारी तो थी ही, रुपये और गल्ले का अच्छा लेन-देन था। परिवार भी बडा और खर्चीला नहीं था। लेकिन, उनके मरते ही सरजू भैया ने लेन-देन चौपट किया, बाढ ने खेती बर्बाद की और भूकम्प ने घर का सत्यानाश किया। उनका लेन-देन इतना अच्छा था कि वह शायद खेती को भी सम्हाल देता, घर भी खडा कर सकता। किंतु, सरजू भैया और लेन-देन?

लेन-देन, जिसे नग्न शब्दो में सूदखोरी कहिए, चाहता है, आदमी आदमीपन को खो दे, वह जोक, खटमल, नही, चीलर बन

जाय। काली जोक और लाल खटमल का स्वतत्र अस्तित्व है। हम उनका खून चूसना महसूस कहते हैं, हम उनमे अपना खून प्रत्यक्ष पाते और देखते हैं। लेकिन, चीलर? गदे कपडे में, उन्ही-सा काला-कुचैला रग लिये, वह चुपचाप पडा रहता है और हमारे खून को यो धीरे-धीरे चूसता है और तुरत उसे अपने रग मे वदल देता है कि उसका चूसना हम जल्द अनुभव नही कर पाते और अनुभव करते भी है, तो ज़रा-सी सुगवुगी या ज्यादा-से-ज्यादा चुनचुनी मात्र। और अनुभव करके भी उसे पकड पाने के लिए तो कोई खुर्दवीन ही चाहिये।

सरजू भैया चीलर नही वन सकते थे। उनके इस लम्वे शरीर मे जो हृदय मिला है, वह शरीर के ही परिमाण से। जो भी दु खिया आया, अपनी विपदा वताई, उसे देवता-सा दे दिया और वसूलने के समय जव वह आँखो में आँसू लाकर गिडगिडाया, तो देवता ही की तरह पसीज गये। सूद कौन कहे, कुछ ही दिनो में मूलधन भी शून्य मे परिणत हो गया। उलटे अव वह खुद हाथ-फेर में व्यस्त रहते है।

वाढ और भूकम्प ने उनके खेत और घर को वर्वाद किया ज़रूर, लेकिन, सरजू भैया, मेरा यकीन है, आज की फटेहाली से वहुत-कुछ वचे रहते, यदि लेन-देन के वाद भी वह इन दोनो की तरफ ही पूरा ध्यान दिये होते। यह नही कि वह जी चुरानेवाले या आलसी और वोदा गृहस्थ है। नही, ठीक इसके खिलाफ—चतुर, फुर्तीला और काम-काजू आदमी है। लेकिन करे तो क्या? उन्हे दूसरे के काम से ही कहाँ फुर्सत मिलती है!

गगोभाई के घर मे वच्चा वीमार है, वैद को वुलाने कौन जायगा, सरजू भैया! हिरदे को वाज़ार से कई सौदा-सुलफा लाना है, वह किसे भेजे, सरजू भैया को! खवर आई है, रामकुमार के मामाजी अपने गाँव में सख्त वीमार है, उनकी खोज-खवर कौन लाये, सरजू भैया से वढकर कौन दूसरा धावन होगा? परमेसर को एक रजिस्टरी करनी है, गिनाख्त कौन करेगा, सरजू भैया। किसी के घर में शादी-व्याह, यज्ञ-जाप हो, और सरजू भैया अस्तव्यस्त। किसी की मौत हो जाने पर, यदि वह अधेरी रात मे हो, तो निश्चय ही उसका कफन खरीदने का जिम्मा सरजू भैया पर रहेगा! यो गाँव भर के लोगो का वोझ अपने सिर पर लेकर सरजू भैया ने अपने खेत और घर को मटियामेट किया है, वल्कि इसी उम्र मे अपनी कमर भी झुका ली है। दिन हो या रात, चिलचिलाती दुपहरिया हो

या अधेरी अवरतिया, सरजू भैया के सेवा-सदन का दरवाजा हमेशा खुला रहता है। विक्टर ह्यूगो ने अपनी अमर कृति 'ला मिजरेब्ल' में कहा है—डाक्टर का दरवाजा कभी वद नही रहना चाहिये और पादरी का फाटक हमेशा खुला होना चाहिये—सरजू भैया को निस्सदेह इन दोनो का रुतवा अकेले हासिल है!

मेरे क्षुद्र विचार से सरजू भैया का व्यक्तित्व अनुकरणीय, अनुसरणीय ही नही, वदनीय, पूजनीय है, जब-जब उन्हे देखता हूँ, मेरा 'ज्ञानी' मस्तक आप-से-आप उनके चरणो मे झुक जाता है। लेकिन, मेरे मन में सबसे बडी चोट लगती है तब, जब देखता हूँ, इस नर-रत्न की कद्र कहाँ तक होगी, बहुत-से लोग इन्हे सुधुआ समझ कर ठगने की चेष्टा करते हैं। यदि यही बात होती, तो भी वर्दाश्त की जा सकती, लेकिन यही नही, इन्हें जब-तब झझटो में डालने की कोशिशें होती और यदि अकस्मात् झझट में पड जाते, तो उससे निकालने की क्या बात, इनके 'तडपने का तमाशा' देखने में लोग मजा अनुभव करते हैं।

अभी थोडे दिनो की बात है। एक दिन सरजू भैया मेरे सामने आकर खडे हुए। मैं कुछ पढ रहा था। सिर नीचा किये ही कहा, बैठिये भैया। किन्तु भैया बैठेंगे क्या, उनकी तो बिग्घी बँधी है और आँखो से आँसू आ रहे हैं। दुबारा कहने पर भी जब नही बैठे, तो उनकी ओर नज़र उठाई। उनका चेहरा देख दग रह गया। मैं सन्न! क्या बात है यह? बहुत आश्वासन और आग्रह पर उनकी जीभ हिली। मालूम हुआ, उनके घर में एक छोटी-सी घटना हो गई है, जैसी घटनायें अपने ही गाँव में मैंने कई बार होते देखी है। लेकिन किसी ने उस ओर ध्यान नही दिया, यदि ज़रूरत हुई, तो उन्हें सुलझा दिया और यदि किसी ने उसे बढाना चाहा, तो लोगो ने उसको डाँट दिया। क्यो? क्योकि वे घटनायें ऐसे घरो में हुई थी, जिनके पास न सिर्फ लक्ष्मी, बल्कि दुर्गा भी हैं—पैसे भी और लाठी भी। लेकिन, सरजू भैया ने तो लोगो के लिये ही अपनी यह हालत कर रखी है। न वह किसी पर धन का धौंस जना सकते हैं, न डडे फटकार सकते है! फिर, क्यो न उन्हे तडपाया जाय, रुलाया जाय? मैंने उन्हें आश्वासन दिया, उन्हे धैर्य हुआ, वह चले गये, लेकिन रात-भर लोगो की इस कृतघ्नता ने मुझे चैन से सोने न दिया?

सुधुआपन से ठगे जाने की एक कहानी। वहुत दिन हुए, मैं किसी ज़रूरत मे था और कुछ रुपए के लिये परीशान था। सरजू भैया के पास कुछ रुपए थे। मेरी बेचैनी वह कैसे देखते ? वह रुपए ले आये। मैंने खर्च कर दिया, लेकिन, आज तक दे नही सका। रुपए तो आये, लेकिन एक आया, दो का खर्च लेकर। सरजू भैया माँगने का हाल क्या जानें ? मै भी समझता रहा, उनके रुपए कहाँ जाते है, ज़रूरत होगी, माँगेगे, दे दूँगा। लेकिन, अभी उस दिन जो वात उन्होने सुनाई, मै हक्कावक्का रह गया।

इस वीच में उन्हे रुपए की ज़रूरत हुई, लेकिन सकोचवश मुझसे नही माँगा। एक सूदखोर महाजन के पास गये, जो पहले उन्ही से कर्ज खाता था , लेकिन, तरह-तरह के कारनामो से अव धन्नासेठ वन चुका है। उसने झट उन्हे रुपये दे दिये , लेकिन जव चलने लगे, कहा—आपसे रुपये जायेंगे कहाँ—लेकिन कोई सवूत तो चाहिये ही। क्या सवूत ? मै तैयार हूँ—सरजू भैया रुपये वॉध चुके थे, न उनसे खोलकर लौटाया जा सकता था और न वह उसकी माँग को नामजूर कर सकते थे। नही, कुछ नही, कागज़ पर सिर्फ निशान वना दीजिये, आपसे वाज़ाव्ता हैंडनोट क्या कराया जाय ? और सरजू भैया ने वमभोला की तरह कजरोटे मे अँगूठा वोर कर कागज़ पर चिपका दिया। मानो, किसी आधुनिक अटोनियो ने किसी कलजुगी शाइलौक के हाथ मे अपने को गिरवी कर दिया।

अव वह कहता है—जल्द रुपये दे दो, नही तो नालिश कर देगे और नालिश कितने की करेगा, कौन ठिकाना—सरजू भैया वेचारगी में वोल रहे थे और मै उनका मुँह आश्चर्य से देख रहा था। आपने ऐसी गलती क्यो कर दी ?—लेकिन, इसके अलावा इसका जवाव वह क्या दे सकते थे कि क्या करूँ, रुपये वाँध चुका था !

सरजू भैया को पाँच सन्ताने हुई, लेकिन वेटियाँ-ही-वेटियाँ। उनकी धर्ममत्नी, जो लम्वाई में ठीक उनके विपरीत, वहुत ही वौनी होने पर भी वहुत गुणो में उनकी ही तरह थी, हाल में वेटा पाने का अरमान लिये हुए मरी है। कह नही सकता ,इस अरमान ने सरजू भैया को ज्यादा चिन्तित किया है या नही। वे वेटियो पर वहुत स्नेह रखते हैं और मेरे घर में जो लडके—मेरे वेटे-भतीजे—है, उनका वचपन तो ज्यादातर उन्ही के कधो पर कटा है। लेकिन वेटियाँ तो अपनी-अपनी ससुराल जा वसेंगी। क्या सरजू भैया का यह पुश्तानी

घर खँडहर बनेगा ? क्या सरजू भैया की कोई निशानी हमारे पडोस को गुलजार न रख सकेगी ? यह कल्पना करते ही हमारे परिवार-भर में अजीब उदासी छा जाती है। उनकी पत्नी की मृत्यु के बाद मैंने अपनी मौसी को कहते सुना—सरजू बबुआ की उमिर ही कितनी है ? यही, मेरे बबुआ से चार बरस बडे हैं, फिर शादी क्यो न करे, क्या बश डुबो देंगे ? और उस दिन देखा, मेरी ढीठ रानी सरजू भैया से झगड रही है—नही, आपको शादी करनी ही पडेगी।

मैं शादी करूँ, जिसमे शर्माजी को (मुझे) नई भौजाई से दिनरात चुहले करने का मजा मिले, क्यो न ?

मुझे देखते ही सरजू भैया बोले और ठठाकर हँस पडे। रानी थोडी सकुची, फिर हँस पडी। मैं दोनो को देखता, चुपचाप मुस्कुराता रहा।

मंगर

हट्टा-कट्टा शरीर। कमर में भगवा। कधे पर हल। हाथ में पैना। आगे-आगे वैल का जोडा। अपनी आवाज़ के हहास से ही वैलो को भगाता, मेरे खेत की ओर सुवह-सुवह जाता—जव से मुझे होश है, मैने मगर को इसी रूप में देखा है, मुझे ऐसा लगता है।

हाँ, मुझे याद आता है, हल के वदले कभी-कभी मुझे भी उसके कधे पर चढने का सौभाग्य मिल चुका है। लेकिन, ऐसे मौके वहुत कम आये हैं। क्योकि, न जाने, मगर को वच्चो से वह स्वाभाविक स्नेह नही, जो उसके-ऐसे लोगो मे प्राय देखा जाता है। उसे देखकर वच्चे भागते ही रहे है और आज जव मगर अशक्य, जर्जर हो चुका है, वच्चे, मानो, इसका वदला चुकाने को, अपनी छोटी छडियो से उसे छेडकर भागते है और जव वह झल्लाता, उन्हे मारने के लिये अपनी वुढ़ापे की लकुटिया खोजता या खीझकर गालियाँ वकने लगता है, तो वे खिलखिला पडते और उसका मुँह चिढाने लगते है।

वच्चो से उसकी वितृष्णा क्यो हुई? शायद इसलिए तो नही

कि उसे जो एक ही बच्चा नसीब हुआ, वह कमाऊ पूत बनने के पहले ही, उसे दगा देकर चल बसा और जो उसकी एक बच्ची भी, सो, लूली, और जिसकी शादी में उसने इतनी दरियादिली दिखलाई, लेकिन, एक बार मुसीबत काटने उसके दरवाजे वह पहुँचा, तो दामाद ने ऐसी बेरुखी दिखलाई कि मगर का स्वाभिमान उसे वहाँ से ज़बर-दस्ती भगा लाया।

मगर का स्वाभिमान—गरीबों में भी स्वाभिमान? लेकिन, मगर की खूबी यह भी रही है। मगर ने किसी की बात कभी बर्दाश्त नहीं की, और शायद अपने से बड़ा किसी को, मन से, माना भी नहीं। मगर मेरे बाबा का अदब करता था, शायद, उनके बुढ़ापे के कारण। सुना है, मेरे बाबूजी को यह बहुत चाहता था—शायद, उनके नेक स्वभाव के कारण। किन्तु, मेरे चाचाओं को तो उसने हमेशा अपनी बराबरी का ही समझा और मुझे तो वह कल तक 'तू' ही कह-कर पुकारता रहा है। किसकी मज़ाल जो मगर को बदजुबान कहे—हलवाहों को मिलनेवाली नितदिन की गालियाँ तो दूर की बात!

ऐसा क्यों?—उसका खास कारण, मगर का यह हट्टा-कट्टा शरीर और उससे भी अधिक उसका सख्त कमाऊपन—जिसमें ईमान-दारी ने चार चाँद लगा दिये थे। जितनी देर में लोगों का हल दस कट्ठा जोतता, मगर पन्द्रह कट्ठा जोत लेता और वह भी ऐसा महीन जोतता कि पहली चास में ही सिराऊ मिलना मुश्किल। मगर को यह बताने की जरूरत नहीं कि कल किस खेत में हल जायगा—वह शाम को ही सारे खेतों की आर-आर घूम आता और जिसकी ताक होती, वहाँ हल लिये सुबह-सुबह पहुँच जाता। जुताई के वक्त किसी की देखरेख की भी जरूरत नहीं। आम हलवाहों के पीछे किसान जो लट्ठ लेकर पड़े रहते हैं, और तो भी वे जी चुराते, ढिलाई करते, आज का काम कल के लिये छोड़ते, यह आदत मगर में थी ही नहीं। यों ही रखवाली चाहे हरी फसल की हो, या सूखी पसही की, खलि-हान में चाहे बोझों की सील हो या अनाज की रास—मगर पर सब छोड़कर निश्चिन्त सोया जा सकता था।

दूसरा ऐसा 'जन' मिलेगा कहाँ? फिर क्यों न उसकी कद्र की जाय? मेरे बाबा कहते थे, मगर हलवाहा नहीं है, सवाँग है। वह अपने सवाँग की तरह-तरह ही कभी-कभी रूठ जाता था और

जब-तब लोगो को झिड़क भी देता था। उसकी झिडक सबके सर-आँखो पर, उसका रूठना और उसकी मनौती होती।

कभी-कभी बाते कुछ बढ भी जाती। एक दिन काफी कहा-सुनी हो गई। दूसरी सुबह मगर हल लेने नही आया—इधर से बुलाहट भी नही गई। रुपये हैं, तब हलवाहे न होगे—कोई नया हलवाहा लेकर जोता गया। उधर कोई दूसरा किसान आकर मगर से बोला—मगरू, देख, उन्होने दूसरा हलवाहा कर लिया है। उन्हे रुपये हैं, हजार हलवाहे मिलेंगे, तो तेरे भी शरीर है, हजार गृहस्थ मिलेंगे। चल, हमारा हल जोत—तू जो कहेगा, मजदूरी दूंगा। लेकिन मेरा सिर जो दर्द कर रहा है—मगर ने इसका जवाब दिया और उसका यह सिर-दर्द तब तक बना रहा जब तक झख मार कर मेरे चाचाजी फिर उसे बुलाने नही गये। क्योकि चार दिनो में ही मालूम हो गया, मगर क्या है। बैलो के कधे छिल गये, उनके पैर मे फार लग गया। खेत में हल तो चला, लेकिन न ढेला हुआ, न मिट्टी मिली। फिर खेत की आर पर बैठे भर-दिन हलवाहे को टुकारी देते रहिये, तब कही दस कटठा ज़मीन जुते! मगर के बिना काम चल नही सकता।

चाचाजी उसके दरवाजे पर खडे है। मगर भीतर घर में बैठा है। मगर की अर्द्धांगिनी भकोलिया ने कहा—मालिक खडे हैं, जाओ, मान जाओ।—कह दे, मेरा सिर दर्द कर रहा है, मगर ने चाचाजी को सुनाकर कहा। मालिक जरा इनके सिर पर मालकिन से तेल दिला दीजियेगा—भकोलिया हँसती हुई बोली। तू मुझसे दिल्लगी करती है—मगर के स्वर में नाराजी थी। मगर, चलो, आपस मे कभी कुछ हो ही जाता है, माफ करो—चाचाजी के स्वर में आरजू-मिन्नत थी। जाइये, उसी से जुतवाइये, जिससे चार दिन जुतवाया है—मुझे ले जाकर क्या होगा—रोटी की बचत भी तो होती होगी। यो ही नोक-झोक, मान-मनौवल। फिर, मगर अपना हलवाही का पैना हाथ में लिये आगे-आगे, और चाचाजी पीछे-पीछे।

यह आधी रोटी की बचत क्या?—इसे समझा आपने? इसे मगर का खास इज़ारा समझिये। जहाँ गाँव-भर में हलवाहे को एक रोटी मिलती, मगर के लिये डेढ रोटी जाती। वह भी रोटी सुअन्न की हो और अच्छी पकी हो। उसपर कोई तरकारी भी ज़रूर हो—

क्योकि मगर किसी का कच्चा नमक नही खाता। मगर की सभी शर्तें पूरी होती।

लेकिन यह डेढ रोटी वह खुद खाता, ऐसा आप नही समझे। क्या अपनी अर्द्धांगिनी के लिए लाता?—नही। आधी को दो टुकडे कर दोनो बैलो को खिला देता। यो, यह आधी रोटी फिर मेरे ही घर में लौट आती, लेकिन, इसमे कोई काट-कपच हो नही सकती थी। महादेव मुँह ताके, और मै खाऊँ—यह कैसे होगा? मगर के लिये ये बैल, बैल नही, साक्षात् महादेव थे।

एकाध बार बात बहुत बढ गई, तो मगर मेरा गाँव छोडकर चला गया। लेकिन, गाँव मे रहते उसने दूसरे का परिहथ नही पकडा। दूसरे गाँव मे भी वह जम नही सका। तब तीसरा गाँव देखा, और अत मारा-मारा फिर मेरे गाँव लौटा। शायद, मेरे घर-ऐसा कद्रद उसे कही नही मिला।

मगर का स्वभाव रूखा और बेलौस रहा है, किसीसे लल्लो-चप्पो नही, लाई-लपटाई नही। दो-टूक बाते, चौ-टूक व्यवहार। तो भी न जाने क्यो, मगर मुझे शुरू से ही स्नेह की नजर से देखता रहा है। शायद इसीलिये कि मेरे बाबूजी उसे बहुत मानते थे। अब भी कहता है—मालिक थे हमारे मँझले बाबू, वह मरे, मेरी तकदीर फूटी। और शायद इसलिये भी कि मै बचपन से ही टूअर हूँ। माँ मर गई, पिता जी चल बसे। तभी तो अपना पवित्र कथा मुझे दिया और जब कुछ बडा हुआ, मै ननिहाल जाने-आने और रहने लगा तो याद आता है, मगर ही मुझे वहाँ पहुँचाता। मै एक छठी घोडी पर सवार, मगर सिर पर सौगात की चीजें और मेरी किताबे लिये, घोडी की लगाम पकडे आगे-आगे। जहाँ नीच-ऊँच जमीन होती, कही मै घोडी से गिर न जाऊँ, बगल मे आकर एक हाथ से मुझे पकड भी लेता। उसके बलिष्ट हाथो के उस कोमल स्पर्श का अनुभव आज भी कर रहा हूँ।

ज्यो-ज्यो बडा होता गया, घर से मेरा सबध टूटता गया। बकौल मगर, मै तो अपने ही घर का मेहमान बन गया। लेकिन, जब-जब दो-चार दिनो के लिये घर जाता, मगर को उसी रूप और उसी पेशे में देखा किया।

कपडो से मगर को बहशत रही है। हमेशा कमर में भगवा ही लपेटे रहता। उसे धोतियाँ मिली हैं। गोवर्धन-पूजा के दिन, हर साल, एक

नई धोती लिये विना वह बैल की सीगो में लटकन वाँधता क्या? यो भी वावा और चाचा साल में जव-तव पुरानी धोतियाँ दिया करते। घर मे शादी-व्याह होने पर उसे लाल धोतियाँ भी मिली हैं। मेरी शादी मे मगर के लिये नया कुर्त्ता भी वना था। लेकिन, धोतियाँ हमेशा उसके सिर का ही सिगार रही, जिन्हे वह मुरेठे की तरह लपेटे रहता और कुर्त्ता, जव मेरी किसी कुटमैती में वह सदेश लेकर जाता, तभी उसकी देह ढँकता। यो, साधारणत वह हमेशा नग-धडग रहता। और मै कहूँ, मुझे उसका शरीर उस रूप मे, वहुत ही अच्छा लगता। आज एक कलाकार की दृष्टि से कहता हूँ, मगर को खूवसरत शरीर मिला था।

काला-कलूटा—फिर भी खूवसूरत? सौंदर्य को रगसाज़ी और नक्कासी का मज़मूआ समझनेवालो की रचि मै समझ नही पाता, यह कहने की गुस्ताखी के लिये आज भी मै माफी माँगने को तैयार नही। मगर का वह काला-कलूटा शरीर, एक सपूर्ण सुविकसित मानव-पुतले का उत्कृष्ट नमूना। लगातार की मेहनत ने उसकी मास-पेशियो को स्वाभाविक ढग पर उभाड रखा था। पहलवानो की तरह उनमे अस्वाभाविक उभाड नही आई थी। जाँघें, छाती, भुजाएँ, सव में जहाँ जितनी जैसी गठन और उभाड चाहिये, वस उतनी ही। न कही मास का लोदा, न कही सूखी काठ। एक सुडौल शरीर पर स्वाभाविक ढग से रखा एक साधारण सिर। मगर के शरीर का खयाल आते ही मुझे प्राकृतिक व्यायाम के हिमायती मिस्टर मूलर की आकृति का स्मरण हो आता है। मैण्डो के शैदाई उससे कुछ निराश हो तो आश्चर्य नही।

लेकिन, आज न वह देवी रही, न वह कडाह रहा। मगर वह नही रहा, जो कभी था। गरीवी को वह अपने अक्खडपन से हमेशा वता वताये रहा। लेकिन उम्र के प्रहारो से वह अपने को वचा नही सका। उसकी एक-एक चोट उसे धीरे-धीरे जर्जर वनाती रही और आज उसपर यह कहावत लागू है—"सूखी हाड ठाठ भई भारी—अव का लदवऽ, हे व्यापारी!"

उसके शरीर के मास और माश-पेशियो ही नही गल गई हैं, उसकी हड्डियाँ तक सूख गई है। आज का उसका यह शरीर उस पुराने शरीर का व्यग्यचित्र-मात्र रह गया है। वुढापे के प्रहारो के लिये जो ढाल का काम करती, उस चीज़ का सग्रह मंगर ने कभी किया ही नही। "आज खाय और कल को झक्खे, ताको गोरख सग न रक्खे"—

का उपासक यह मगर सग्रह का तो दुश्मन रहा। कोई सतान भी नही रही, जो वुढापे मे उसकी लाठी वनती। उम्र ने इस निरस्त्र कवचहीन योद्धा पर वे सभी तीर छोडे जो उसके तरकस में थे! मगर वुढापे के कारण हल चलाने के योग्य नही रह गया, तो कुछ दिनो तक उससे कुछ फुटकर काम लिये गये, लेकिन यह भी ज्यादा दिनो तक नही चल सका। अव एक ही उपाय रह गया था, उसे पेशन मिले। लेकिन, हलवाहो—यथार्थ अन्नदाताओ —के लिये पेंशन की हमारे अभागे देश में कहाँ व्यवस्था है और व्यक्तिगत दया का दायरा तो हमेशा ही तग रहा है! फिर मगर में जली हुई रस्सी की वह ऐंठन और शायद गर्मी भी है, जिससे दया का वादल हमेशा ही उससे दूर-दूर भागता रहा है। दया का वादल चाहता है आशीर्वचनो की शीतल सतह और मगर के शब्दकोश में उसका सर्वथा अभाव ही समझिये। इसके वदले आज भी वही वेलौस वातें, झडप-झिडकियो की आँच, जो पानी की क्या वात, खून को भी सूखा दे। इसके वावजूद उदारता की स्वाती-वून्दें कभी-कभी टपकती, किन्तु पपीहे की प्यास उससे भले ही वुझे, मगर के वुढापे की मरुभूमि उससे सीची नही जा सकती। यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि आज हम मगर की हड्डियो का यह झाँझर भी नही पाते, अगर उसकी अर्द्धागिनी नही होती।

उसकी अर्द्धागिनी—भकोलिया! मगर की आदर्श जोडी। वही जमुनिया रग—काली कहकर मै उसका अपमान क्यो करूँ! दो ही वच्चे हुए, इस लिये स्त्रीत्व के उस महान क्षय से वहुत-कुछ वह वची रही, जो मातृत्व का सुन्दर नाम पाता है। यही कारण है, मगर जर्जर-झर्झर हो गया, लेकिन भकोलिया अभी चलती-फिरती है, कुछ हाथ-पाँव चलाकर सग्रह कर लेती और दोनो प्राणियो गुज़र चला पाती है। लेकिन, यह भी कव तक? क्योकि वह वेचारी भी दिन-दिन छीजती जाती है।

भकोलिया—मगर की आदर्श जोडी। शारीरिक ढाँचे में ही नही, स्वभाव में भी। वे भी दिन थे, जव वह तमक कर वोलती, झपट कर चलती। न किसी को मुँह लगाती और न किसी की हेठी वरदाश्त करती। जिस किसी ने छेडा, मानो काली साँपिन के फन पर पैर रखा। लेकिन भकोलिया में सिर्फ फुकार मात्र था—दशन और विष का आरोप उसके साथ महान अन्याय होगा।

पर, मर्दों की अपेक्षा औरतें अपने को परिस्थिति के साँचे

में ज्यादा और जल्द ढाल सकती है, इसका उदाहरण यह भकोलिया है। मगर आज भी वही मगर है—मुह का बेलौस या फूहड कहिये , लेकिन ,भकोलिया वही नही रही। किसी का बच्चा खेला दिया, किसी का कुटान-पिसान कर लिया, किसी का गोबर पाथ दिया, किसी का पानी भर दिया और जो कुछ मिला, उसमें पहले मगर को खिलाकर आप पीछे खाने बैठी। किन्तु इतना करने पर भी, वह हमेशा मगर की फटकार सुना करती है। मगर अपना सारा पित्त और पुरानी झडप अब ज्यादातर इसी पर झाडता है।

"भगवान की मर्जी"—कह कर मगर जिसके नाम पर अपनी मुसीबतो के बिसर जाने का प्रयत्न करता रहा, उस भगवान ने पार-साल उसकी और दुर्गत कर दी। उसे जोरो से अधकपारी उठी। भकोलिया उसकी चिल्लाहट से पसीज, किसी दया की मूर्त्ति से दार-चीनी माँग लाई और उसे बकरी के दूध मे पीसकर उसका लेप उसके ललाट पर कर दिया। बाई पुटपुरी पर और आँख पर भी लगा दे —मगर ने लेप की पहली ठढाई अनुभव कर कहा। भकोलिया हुक्म बजा लाई। लेकिन, यह क्या? जहाँ-जहाँ लेप था, वहाँ अजीब जलन शुरू हुई। जलन जख्म में बदली और जख्म ने उसकी एक आख ले ली। जब मै घर गया—बबुआजी, मेरी एक आँख चली गई, मै काना हो गया—कहकर मगर रोने लगा। शायद मगर को मैंने यही पहली बार रोते देखा। मै उसे ढाढस दे रहा था, लेकिन मेरा हृदय .

और, बिपदा अकेली कब रही?

पिछले माघ में मै घर पहुँचा। सुबह। धूप निकल आई थी। लेकिन, अपने चिर-अभ्यास के अनुसार, मै आँखें मूंदें, रजाई से लिपटा पडा था। थोडी-थोडी देर पर कुछ गिरने की-सी धम-धम आजाव होती। रज़ाई मुँह से हटा कर आँखें खोली। देखा सामने पुआल के टाल के नजदीक, एक काला-सा अस्थिपजर बार-बार खडा होने की कोशिश करता और गिरता है। यह क्या। चौककर उठा। उस ओर बढा। यह तो मगर है! सुना है, मगर को अर्द्धाग मार गया है। देखा आँखें सजल हो उठी। निकट गया, उसे सम्हाला फिर कहा—मगर, पडे क्यो नही रहते—यह कैसी चोट लग रही होगी।

पडे-पडे मन ऊब जाता है, बबुआ!—मगर ने जवाब दिया।

उफ, नसें ढीली पड गईं, खून का सोता सूख गया। लेकिन, अब भी उसमें तरंगें उठतीं, और किसी सूखे सागर की तरह बालू के तट पर सिर धुन, पछाड खा, गिर पडती हैं। कैसा करुण दृष्य!

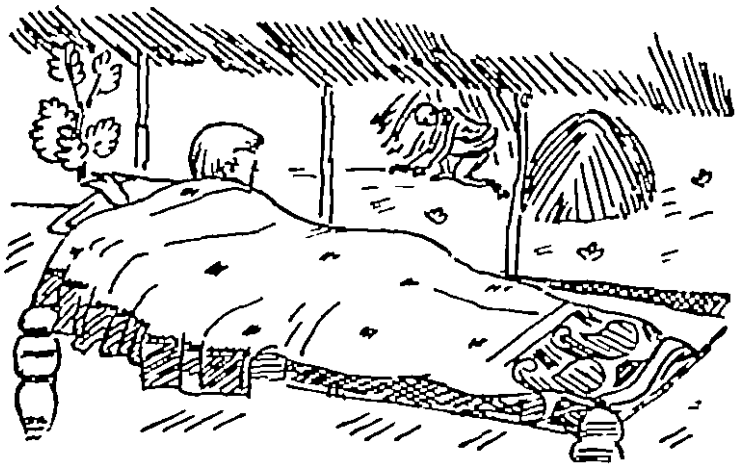

रूपा की आजी

कुछ दिन चढे, मै स्कूल से आकर, आँगन में पलथी मारे चिउरा-दही का कौर-पर-कौर निगल रहा था कि अकस्मात् मामी ने मेरी थाली उठा ली, उसे घर मे ले आई। पीछे-पीछे मै अवाक् उनके साथ लगा था , थाली रख मुझसे वोली—"वस, यही खा, वाहर मत निकलना, रूपा की आजी आ रही है, नजर लगा देगी! समझे न?"

मै समझता क्या खाक? हाँ, रूपा की आजी से कौन नही डरता? कौन वच्चा उनकी वडी-वडी आँखें देखकर न सिहर उठता? वह डायन है—गाँव-भर मे यह वात प्रसिद्ध है। वह जिसको चाहे, जादू की एक फूंक मे मार सकती है। वच्चो पर उनकी खास नज़रे-इनायत रहती है। कितने वच्चो को, हँसते-खेलते शिशुओ को, उनकी ये वडी-वडी आँखें निग ल चुकी है!

वडी-वडी आँखे!

रूपा की आजी की यह है मूरत-शक्ल—लम्बी गोरी औरत, भरा-पूरा वदन। हमेशा साफ, सुफेद वगावग कपडा पहने रहती। उस कपडे के घेरे से उसका चेहरा रोव वरसाता। फिर, उनकी वडी-वडी आँखें, जिनपर लाली की एक हल्की छाया! पूरे वदन का ढाँचा मर्दो के ऐसा, मानो धोखे से औरत हो गई हो। जिस गाँव से यह आई हैं, वहाँ, लोग कहते हैं, औरतो का ही राज है। लोगो ने मना किया उनके ससुर को, वहाँ वेटे की शादी मत कीजिये। किन्तु वह भी पूरे अखाडिया थे—ज़िद कर गये, देखे, कैसी होती है वहाँ की लडकी।

रूपा की आजी व्याह के आई। आने के थोडे ही दिनो वाद ससुरजी चल वसे। कुछ दिनो के वाद रूपा के दादा जी भी। इन दोनो की मौत अजीव हुई। ससुरजी दोपहर में खेत से आये, रूपा की आजी ने थाली परस कर उनके सामने रखी। दो कौर खा पाये थे कि पेट में खोचा मारा, दर्द हुआ, खाना छोडकर उठ गये। शाम होते-होते उसी दर्द से चल वसे। रूपा के दादाजी एक वरात से लौटे, थकेमाँदे, नवोढा पत्नी—रूपा की आजी—ने, हँसकर ,एक गिलास पानी पीने को दिया। पानी पीते ही सिर धमका, ज्वर आया, उसी ज्वर से तीन दिनो के अन्दर स्वर्ग सिधारे!

पहली घटना से ही कानाफूसी शुरू हो गई थी, दूसरी घटना ने विल्कुल सिद्ध कर दिया—रूपा की आजी डायन है, वे ही दोनो को जादू के ज़ोर से खा गई हैं।

रूपा के पिताजी का जन्म उसके तीन-चार महीने वाद हुआ। रूपा की आजी की गोद भरी—आखिर इस डायन ने अपना खान्दान वचा लिया, लोगो ने कहना शुरू किया। वेटे को इस डायन ने वडे नाज़ से पाला पोसा, वडा किया, उसकी शादी की—धूमधाम से। किन्तु, कैसी है यह चुडैल! शादी का वरस लगते-लगते वेटे को खा गई—मुछउठान जवान वेटे को! कितना सुन्दर, गठीला जवान था वह! कुश्ती खेल कर आया, इसके हाथ से दूध पीया। खून के दस्त होने लगे! कुछ ही घटो में चल वसा। उसके मरने के वाद इस 'रूपा' का जन्म हुआ और रूपा अभी प्रसूतिगृह में ही के-कें कर रही थी कि उसकी माँ चल वसी! वाप रे, रूपा की आजी कैसी वडी डायन है! डायन पहले अपने ही घर को स्वाहा करती है!

जवान वेटे की मृत्यु के वाद, रूपा की आजी में अजीव परिवर्तन हुआ। आँखें हमेशा लाल रहती, छोटी-छोटी वातो से भी आँसू की धारा वह निकलती ; होठो होठ कुछ वुदवुदाती रहती ; दोनो जून स्नान कर भगवती का पिंड लीपती, धूप देती, वहुत साफ कपडा पहनती , जिस जवान को देखती, देखती ही रह जाती , जिसे वच्चे पर नज़र डालती, मानो आँखो मे पी जायँगी ! लोगो ने शोर किया —अव इसका डायनपन विल्कुल प्रगट हो गया। डरो, भागो—रूपा की आजी से वचो !

रूपा की आजी से वचो—लेकिन वचोगे कैसे ? भर दिन रूपा को गोद लिये कधे, चढाये, या उसकी छोटी ऊँगलियाँ पकडे यह इस गली से उस गली, इस घर से उस घर आती-जाती ही रहती है ! न एक व्रत छोडती है, न एक तीरथ। और, हर व्रत और तीरथ के वाद गाँव भर का चक्कर ! उत्सवो में विना वुलाये ही हाज़िर ! उफ, यह डायन कव मरेगी ? कव गाँव को इससे नजात मिलेगी।

मन ही मन यह मनाया जाता, किन्तु, ज्योही रूपा की आजी सामने आई नही कि उनकी खुशामदे होती। कही वह नाराज़ न हो जायँ। अपने ससुर, पति, वेटे और पतोहू को खाते जिसे देर न लगी, वह दूसरो के वालवच्चो पर क्यो तरस खायेगी ? स्त्रियाँ उन्हे देखते काँप उठती, किन्तु, ज्योही वह उनके सामने आई कि दादीजी कहकर उनका आदर-सत्कार करना शुरू किया। इस आसन पर वैठिये, जरा हुक्का पी लीजिये, सुपारी खा लीजिये, यह सौगात आई है, जरा चख लीजिये, आदि आदि। रूपा की आजी कुछ सत्कार स्वीकार करती, कुछ अस्वीकार। उनकी अस्वीकृति आग्रह नही मानती थी। अस्वीकृति ! और, लोगो में थरथरी लग गई। फिर, परिवार ही ठहरा ; अगर वरस-छ. महीने मे किसी को कुछ हुआ, तो रूपा की आजी के सिर पर दोप गिरा !

कितने ओझे वुलाये गये इस डायन को सर करने के लिये। उनके वडे-वडे दावे थे—डायन मेरे सामने होते ही नगी नाचने लगेगी, डायन के कोचे से आप ही आप आग जल उठेगी , डायन खून उगलने लगेगी , डायन पागल होकर आप ही आप वकने लगेगी। ओझा आये, तान्त्रिक आये। टोने हुए, ततर हुए। तेली के मसान की लकडी, वेमौसम के ओडहुल के फूल, उलटी सरसो का तेल, मेढक की खाल, वाघ का दाँत—क्या-क्या न इकट्ठे किये गये। ढोल वजे, झाझ

वजे, गीत हुए, देव आये, भूत आये, देवीजी आई! किन्तु रूपा की आजी न पागल हुई, न नगी नाची, न उनकी देह पर फफोले उठे। ओझा गये, तान्त्रिक गये, कहते हुये—उफ, यह घाघ है। विना कारू-कमच्छा गये, इसका जादू हटाया नही जा सकता। कई ओझे इसके लिये रुपये भी ऐंठते गये, किन्तु, रूपा की आजी जस-की-तस रही।

× × ×

मै वडा हुआ, लिखा-पढा, नये ज्ञान ने भूत-प्रेत पर मे विश्वास हटाया, जादू-टोने पर से आस्था हटाई। मैंने कहना शुरू किया——यह गलत वात, रूपा की आजी पर झूठी तुहमत लगाई जाती है! वेचारी के घर में एक के वाद एक आकस्मिक मृत्युएँ हुई, उसका दिमाग ठीक नही। आँखो की लाली या पानी डायनपन की नही, उसकी करुणाजनक स्थिति की निशानी है। वच्चो को देखकर, दुलारक जवानो को घूर-घूर कर वह अपने जवान वच्चे की याद करती या उसे भूलने की कोशिश करती है। पूजापाठ सव उसीकी प्रतिक्रिया है। दुनिया में भूत कोई चीज़ नही, जादू-टोना सव गलत चीज़! लेकिन, मेरी वात कौन सुनता है? एक दिन मामी मेरी इस वकझक से व्याकुल होकर वोली—

हाँ, तुम्हें क्या, तुम्हारे लिये जरूर जादू-टोना गलत है। भगवान तुम्हे चिरजीवी करे। किन्तु, उनसे पूछो, जिनकी कोख इस डायन ने सूनी कर दी, जिनके वच्चो को यह जिन्दा चवा गई, जिनके हँसते-खेलते घर को इसने मसान वना दिया।

कहते-कहते उनकी आँखें भर आई, कुछ गरम-गरम वूँदे आँखो से निकल कर ज़मीन पर ढुलक रही। फिर वोली—

उस पडोसिन की वात है। उसकी वेटी ससुराल से लौटी थी—गोद भरकर, एकदिन, उसका छ वर्ष का नाती आँगन में किलक रहा था। कितना सुन्दर था वह वच्चा! जैसे विधना ने अपने हाथो सँवारा हो। जो देखता, मोह जाता। कई दिन मेरे घर आया था—जवर-दस्ती मेरे कधे पर चढ गया, दही माँग कर खाया। तुतली-तुतली वोली, चिकने-चिकने दुध-मुँहे दाँत। हँसता तो इँजोरिया हो जाती। किलकिलाता, तो हरसिंगार झडने लगते। और, वैसे वच्चे को

हाँ, एकदिन वह वच्चा अपने आँगन में था, कि यह भुतनी पहुँची। यह भुतनी—हाँ, इसी तरह आँसू वहाती, होठ हिलाती, रूपा का हाथ पकडे हुई। इसे देखते ही उसकी माँ का मुँह सूख गया; नानी डर गई ; चाहा, वच्चे को छिपा दें । किन्तु वह वच्चा छिपाने लायक भी तो नही था ! ऊधमी ,नटखट ! झटपट दौडा आया, इस चुडैल के कधे पर चढ गया। चढकर इसके वालो को नोचने, गरदन को हिलाने और अपने छोटे-छोटे पैरो से इसे एँडियाने लगा। वच्चे की इस हरकत से भुतनी हँस पडी—पहली वार लोगो ने इसे हँसते देखा। फिर खुद घोडा वनी, वच्चे को सवार वनाया और वहुत देर तक घुडदौड करती, वच्चे को हँसाती-खेलाती रही। वार-वार उसे छाती से लगाती कहती, ऐसा वच्चा दूसरा न देखा। आह मेरा.. किन्तु, वात वीच ही मे काट कर फूट-फूट कर रो पडी। उसे रोते देख, वच्चे ने ही गुदगुदी लगाकर, रिझाकर, भुलाकर उसे चुप कराया। चुडैल घर चली, आशीर्वाद देती हुई—जुग-जुग जीये यह वच्चा, तुम्हारी गोद हमेशा भरी रहे वेटी , भरी रहे, इसी तरह सोने की मूरत उगलती रहे। उसकी माँ भौचक, नानी के के जैसे जी मे जी आया।

किन्तु, जानते हो, इसके वाद क्या हुआ ? मामी कहे जा रही थी। कुछ ही दिनो के वाद लडके को सूखा रोग लग गया। कहाँ गया उसका वह रूप, वह रग, वह चुहल, वह हँसी। सूख कर काँटा हो गया, दिनरात चेंचें किये रहता। जो उसे देखते, आँसू वहाते और एक दिन आँसूओ की वाढ लाकर वह उफ !

उस दिन उसकी माँ को तुम देखते। पागल हो गई थी वेचारी ! वच्चे की लाश को पकड थी, छोडती नही थी। किसकी हिम्मत जो उससे वच्चा माँगे ? आँसू सूख कर ज्वाला वन गये थे—उसकी आँखो से चनगारी निकल रही थी ! वच्चे को छाती से चिपकाये थी, जैसे वह दूध-पीता वच्चा हो। अट-सट वोलती, वच्चे के मुँह में छाती देने की कोशिश करती ! उसे चुप देख, कभी-कभी चिल्ला उठती—जव चिल्लाती, मालूम होता, उसका कलेजा फट रहा है, सुननेवालो के भी कलेजे फटते .

मैं देख रहा था, मामी का कलेजा आज भी फटा जा रहा है। किस्से का अत शब्द से नही, आँसुओ के ज्वार से हुआ।

और, मामी के वच्चे को भी तो इसी ने खाया—वह वोलती नही है, किन्तु उनके करुण चेहरे की एकएक भावभगी—आँसू की एक-एक वूँद—यह कह रही है। कम्वख्त को वच्चे खाकर भी सतोप न हुआ, मामी की कोख में जैसे इसने राख भर दी। तवसे एक भी वेटा न हुआ, वहुत जत्र-मत्र के वाद हुई तो दो वेटियाँ!

मामी की क्या वात, एक दिन मामाजी भी मेरे उपर्युक्त तर्कों पर नाराज़ हुये और अपनी आँखो-देखी घटना सुनाई—

'वह ऊँची जगह देखते हो न? वहाँ एक दुसाध आ वसा था। वूढा था, दो नौजवान लडके थे उसके, घर में वीवी, पतोहुए दोनो वेटे वडे ही कमाऊ-पूत। गठीले जवान। वूढा भी काफी हुनर-मद। थोडे ही दिनो में गाँव में उनकी पूछ हो गई। वाहु का वल था। कमाते, खाते। नेक स्वभाव के—न किसी से झगडा, न झमेला। सवको खुश रखने की कोशिश करते, सवके काम आते।

एक दिन वह वुढिया,—तुम्हारी रूपा की आजी—पहुँची और वोली, जरा आज मेरा काम कर दो। वूढे ने देखते ही सलाम किया, वैठने को कुश की चटाई रख दी। वुढिया नही वैठी—दुसाध से हड्डी छुला जाती है, फिर, मै वाभनी। वूढा न वोला, सिर्फ अर्ज किया—आज तो दूसरे वावू को वचन दे चुका हूँ, कल आपका काम हो जायगा। वुढिया ने ज़िद की—नही आज ही मेरा काम होना चाहिये। वीच ही में वडा लडका वोल उठा—दुसाध से हड्डी छुलाती है, तो घर नही छुलायगा? वुढिया तमक उठी!—तुम मेरा अपमान करते हो। इसलिये न कि मै निपूती हूँ, मुझसे तुम्हें क्या डर, मेरा लडका होता । वुढिया पहले गरजी, अव वरस रही थी! वूढा दुसाध भौंचक। हाथ जोडकर आरजू-मिन्नत करता रहा—अभी चलता हूँ, हम अभी चलते है, वावू का काम कल होगा, आज आपही का। किन्तु, वुढिया वहाँ जरा भी क्यो ठहरती? घर लौटी।

इसी रास्ते वह जा रही थी, मामा जी ने कहा, मैंने देखा, उसके होठ जल्द-जल्द हिल रहे थे, आँखें लाल थी, आँचल से आँसू पोछती जाती। पीछे-पीछे वूढा दौडा जा रहा था। बूढे को रोककर मैंने दरियाफ्त किया, उसने सारी वात वताई। वह काँप गया था—वावू, वाल-वच्चे वाला हूँ, न जाने क्या हो जाय?

और विश्वास करोगे, तुम्हारी रँगरेजी विद्या इसका क्या माने वतायगी, कि उसी रात में वूढे के वडे वेटे को साँप ने काट लिया।

भोर में देखा, हाय, वह पठ्ठा वेहोश पडा है। समूचा शरीर पीला पड गया है, मुँह से झाग निकल रहा है। गाँव-गाँव से साँप का विष उतारनेवाले पहुँचे हैं। कोई जोर-जोर से मत्र पढ रहा है, कोई कोडे फटकार रहा है, कोई जडी पीसकर पिलाने की कोशिश में है, कोई उसकी नाक में कुछ सुँघा रहा है। जव-तव वह आँखें खोलता है, रह-रहकर हाथ-पैर फटकारता है, फिर निस्तव्ध हो रहता है। निस्तव्धता निस्पदता मे और निस्पदता निर्जीवता में वदलती जाती है। वूढा वाप छाती पीट-रहा है, छोटा भाई दाढ मार कर रो रहा है। माँ और स्त्री की गत का क्या कहना! विप उतारनेवाले कहते है, हम क्या करे? साँप का विप उतरता है न? यह तो आदमी का विप है! सीधा जादू, ठीक आधी रात को लगाया गया है, उतर जाय, तो भाग। वूढे का वैसा भाग्य नही था। धीरे-धीरे हमलोगो के देखते-देखते, उस जवान वेटे की अर्थी उठ कर रही! दूसरे ही दिन उसका सारा परिवार गाँव छोडकर चला गया!

अरे, यह वुढिया नही, काल है! आदमी नही, साँपिन है। चलती-फिरती चुडैल! वाभनी है, नही तो, इसे ज़िन्दा गाड देने में कोई पाप नही लगता!

मामा की आँखें अव अँगारे उगल रही थी। मै चुप था! भावना पर दलील का क्या असर हो सकता है भला?

× × ×

शिवरात्रि का यह मेला। लोगो की अपार भीड। वच्चे, जवान, वूढे, लडकियाँ, युवतियाँ, वूढियाँ। शिवजी पर पानी, अक्षत, वेलपत्र, फूल, फल। फिर ,एक ही दिन के लिये लगे इस मेले में घूम-फिर , खरीद फरोख्त। धक्के-पर-धक्के। चलने की ज़रूरत नही, अपने को भीड में डाल दीजिये, आप-ही-आप किसी छोर पर लग जाइयेगा। वच्चो और स्त्रियो की अधिकता! उन्ही के लायक ज्यादा सौदे। खँजडी, पिपही, झनझुने , मिट्टी की मूरते, रवर के खिलोने, कपडे के गुड्डे , रगीन मिठाइया, विस्कुट, लेमनचुस। टिकुली, सेंदुर, चूडियाँ! रेशम के लच्छे, नकली गोट, चकमक के पत्ते ; आईना, कंघी, सावुन , सस्ते

एसेस और रगीन पाउडर। भावसाव की छूट, हल्ला गुल्ला। गहनो के झमझन मे चूडियो की झनझन। साडियो की सरसर मे हँसी की खिलखिल।

कही नाच हो रहा, कही वहुरुपिये स्वाँग दिखा रहे, घिरनी और चरखी पर वच्चे झूले का मजा लूट रहे।

अकस्मात् एक ओर से शोर। "पगली-पगली-पगली" "छोडो-छोडो-छोडो।" "डायन, डायन, डायन।" "मारो, मारो-मारो।"

एक औरत भागी जा रही है, अधनगी, अधमरी। लोग उसका पीछा कर रहे है। वात क्या है?

मेले में आई एक युवती अपने वच्चे को एक सखी के सुपुर्द कर सौदा करने गई थी। सखी जरा चचल स्वभाव की थी। वच्चे चचल होते ही है। सखी 'लाल छडी' की रगीन मिठाई वेचनेवाले की वोली पर भूल गई—मेरी लाल छडी अलवत्ता, मै तो वेचूँगा कलकत्ता! इधर वच्चा उसकी अगुली छुडाकर, धीरे से वहाँ से निकल कर झुनझुनवाले के पास पहुँच गया। जव सखी का ध्यान लाल छडी से टूटा, तो वह व्याकुल होकर वच्चे को खोजने निकली। देखती क्या है, एक वुढिया उस वच्चे को गोद में लिये झुनझुने दे रही और मिठाइयाँ खिला रही! कैसी उसकी सूरत—फटाचिटा कपडा, धूल से भरा शरीर, विखरे वाल, लाल-लाल आँखें, वडी-वडी टाँग, वडी-वडी वाँह! उसे देखते ही, वह चीख पडी—डायन! वुढिया चौकी, गुर्राई—ऐं क्या वोलती है? किन्तु वह तो चिल्लाये जा रही थी—डायन, डायन, डायन! हल्ला देख वच्चा चीखने लगा। वुढिया ने वच्चे को कधे पर लिया! वह वुढिया के नजदीक पहुँच कर वच्चे को उससे छीनने की कोशिश करने लगी। एक हल्ला, एक शोर, एक गौगा। अव वच्चा सखी की गोद मे, और वुढिया को लोग पीट रहे है। वच्चा वार-वार उसकी ओर देखकर 'वुदिया'—'वुदिया' कह उठता है, मानो उसकी मार पर तरस खाता हो, उसको गोद को ललक रहा हो। किन्तु कौन उस पर ध्यान देता है?

वुढिया भागी जा रही है, स्त्रियाँ, वच्चे, मर्द उसके पीछे लगे है। थोडी-थोडी देर वह रुकती है, दाँत दिखाती है, हाथ जोडती है कभी-कभी गुस्सा होकर ढेले उठाती है। वह सिर्फ ढेले उठाती

है, लोग उस पर ढेले फेकते है। इसी भगाभगी मे वह एक ऐसी जगह पहुँचती है, जहाँ पहले एक कुँआ था। अव उसकी गच खराव हो गई थी, वह भथ रहा था। भागने मे व्याकुल, उसका ध्यान उस ओर न रहा, धडाम से उस कुँए में जा रही!

भीड रुकती है! कोई कहता है—मरने दो। कोई कहता है—निकालो। जवतक निर्दयता पर करुणा की विजय हो, तवतक वह जल-समाधि ले चुकती है।

यह उसकी लाश है! किसकी लाश? वुढिया की लाश — रूपा की आजी की लाश!

रूपा की आजी की लाश? वह यहाँ कहाँ?

रूपा की शादी वडी धूम से की उसने। सारी ज़ायदाद वेचकर। जिस भोर में रूपा की पालकी ससुराल चली, उसी शाम को वह घर छोडकर चल दी। कहाँ? कौन जाने? इतने दिनो तक वह कहाँ-कहाँ की धूल छानती, आज पहुँची थी इस मेले में! क्यो? क्या रूपा को देखने? उसके वच्चे को देखने! क्या वह रूपा का वच्चा था? उसने परिचय क्यो न दिया?

छोडिये उस चर्चा को।

वहुत दिन हुए, रविवावू की एक कहानी पढी थी। एक भद्र परिवार की महिला हैजे मे मर गई। लोग जलाने को श्मशान ले गये। चिता सजाई जा रही थी कि वर्षा होने लगी। चिता छोडकर लोग वगल की अमराई की मँडैया में छिप रहे। काली रात थी। जव वर्षा खतम हुई उन्होने पाया चिता से मुर्दा गायव! क्या सियार खा गये? खोज-ढूँढ फिज़ूल गई। किन्तु, किस तरह वावू साहव से कहा जायगा कि उनकी असावधानी से मुर्दा गायव हुआ? झूठमूठ चिता मे आग लगाकर चले आये। इधर वेचारी महिला पानी की वूँद से जीवन पा चिता से उठी। दिनभर खेतो मे छिपी रही, भद्रकुल की महिला थी। रात मे जव घर पहुँची, दरवाज़ा खटखटाया। उसकी वोली सुन, लोग दौडे—अरे, भूत, भूत! —नैहर पहुँची, वहाँ भी भूत-भूत, वहन के घर पहुँची, वहाँ भी भत-भूत। जहाँ जाय, वही भूत, भूत भूत! आखिर उसने अपने को गगाजी की गोद में सिपुर्द कर दिया।

क्या 'रूपा की आजी' भी कुछ इसी तरह लोकापवाद की शिकार नही हुई? घटनाओ ने उसके साथ साज़िशे की, लोगोने जल्लाद का काम किया!

देव

तपेसर भाई के वगीचे में विलायती अमरूद का एक पेड था। मै कह नही सकता, उसकी पहली कलम विलायत से आई थी, या कहाँ से। नई किस्म की चीज़ो का—खासकर वह छोटी नस्ल की हो—तो विलायती नाम पडते मैंने दिहातो में प्राय देखा है। छोटे कुत्ते विलायती कुत्ते हो गये हैं! टमाटर विलायती वैगन वन गया है।

यह विलायती अमरूद का पेड साधारण अमरूद के पेडो से छोटा। इसकी डालियाँ तुनक, लचीली। पत्ते गहरे हरे, ज्यादा चिकने और छोटे-छोटे। फल वडी सुपारी से वडे नही, पकने पर उनपर दुधिया रग चढ जाता। लेकिन, गूदा लाला टेस।

हम वच्चे इसपर किस तरह टूटते और हमसे रखवाली करने मे तपेसर भाई कैसी चौकसी रखते!

"देखा है देव तुमने?—विलायती अमरूद कैसे पक गये हैं?

"कहो, तोड लाऊँ।"

"अरे, तपेसर भाई टाँग तोड देंगे।"

"हट, बडे तोडनेवाले बने है वह।"

वह तीर-सा सन से निकला। पेडो और झाडियो की आट लेता, लुकता-छिपता, कही झुकता, कही पेट के बल रेगता, धीरे-धीरे विलायती अमरूद के पेड के नीचे पहुँचा और फिर बन्दर-सा, नही गिलहरी-सा वह सर्र-से पेड पर चढ गया। हमने दूर से देखा, उसके छोटे-छोटे हाथ तावडतोड पके अमरूद तोड रहे है। इधर मेरी जीभ पानी-पानी हो रही थी।

लाभ से लोभ। देव धीरे-धीरे पतली-से-पतली डाली पर खिसकता गया और मै देख ही रहा था, वह लपक कर एक पका अमरूद पकड रहा था कि उसके पैर के नीचे की डाली अरराकर टूट गई। बायें हाथ से ऊपर की जिस पतली डाली को वह पकडे था, वह भी उसके पूरे बोझ को बर्दाश्त न कर सकी। उसे लिये-दिये वह जमीन पर, धम्म से, आ रहा।

और, यह खरखराहट सुन तपेसर भाई अपनी मँडैया से सोटा लिये निकले। देव एक मिनट भी बैठा नही रहा। फुर्ती से खडा हुआ और सिर पर पैर रख भागा। बूढे तपेसर भाई कहाँ तक दौडते? गाली-गुफ्ता देकर बगीचे में लौट आये।

मै दूसरी राह से जाकर उससे मिला। उसके कोट की दोनो जेबो से पके अमरूद, पत्तियो सहित, झाँक रहे थे। लो खाओ—उसने अपना हाथ कोट के पाकेट में डालना चाहा!

अरे, यह क्या?

देखा उसकी बाई बाँह निर्जीव झूल रही है। केहुनी की हड्डी उतर गई है—मालूम होता है हाथ के दो टुकडे हो गये है, जो चमडे से जुटे-मात्र है। देव ने उस ओर, भागने के जोर मे ध्यान भी न दिया था। मैंने समझा, अब इस ओर ध्यान जाते ही देव पीडा से चिल्ला उठेगा, लेकिन वह—

वह जरा-सा चौंका-भर। बिना आह-उफ किये, अमरूद की ओर इशारा करते, मुझसे बोला—जेब से निकाल लो। मै क्या निकालता, काँपता हुआ बोला—उफ, देव, तुम्हारी बाँह टूट गई!

जुट जायगी—वह लापरवाही से बोला और मेरे अँगोछे की ओर इशारा करते कहा—जरा इससे समेटकर इसे मेरे गले से बाँध तो दे।

उस टूटी हुई बाँह को अँगोछे में सँभाल कर, झोले की तरह, उसको गर्दन से लटकाते हुए, मैंने कितनी पीडा का अनुभव किया! लेकिन, उसने जरा उँह भी की? हाँ, उसकी आँखे कुछ लाल जरूर हो आई। मैंने कहा—कैसे हो तुम, क्या दर्द नही मालूम होता?

होता क्यो नही, वाह! लेकिन, चिल्लाने से क्या? क्या उससे दर्द कम हो जायगा? उसके होठ हिल रहे थे।

× × ^

चारो ओर हरियाली-ही-हरियाली। खेतो में मकई, सावाँ, धान, भदई, लहरा रही। रास्तो और सडको पर तरह-तरह की घासे उग आई। पेडो की धुली-पुँछी पत्तियाँ मन को मोह लेती। घरो पर कद्दू-झिगुनी आदि की लताये फैल रही।

इसी हरियाली मे जन्माष्टमी पहुँच आई। आम के बगीचो मे मिठुआ, बम्बई, मालदह की फसल खतम हो चली थी जरूर! लेकिन अभी फजली, भदैया, राढी के गुच्छे लटक ही रहे थे। खेतो मे मकई की बालो मे दूध भर आया था। बारियो में अमरूद की डालियाँ और खीरे की लत्तियाँ फलो से लदी थी। एक तो 'फलाहार' की ऐसी सुविधा, फिर दिनभर का ही तो व्रत—हम बच्चो के लिये जन्माष्टमी से बढकर कौन व्रत हो सकता था? हममे से अधिकाश व्रती थे।

बगीचे के बीच में जो ठाकुरबारी है, उसमे व्रत की तैयारियाँ हो रही थी। लोगो की आवाजाही लगी थी। तरह-तरह के 'प्रसाद' तैयार किये जा रहे थे। धनिया भून कर 'पजनी' बनाने की जो तैयारियाँ हो रही थी, उसकी सोधी सुगन्ध हम बच्चो को पागल बना रही थी, ठाकुरबारी से कुछ दूर हट, एक पेड पर झूला डाले, पेंग-पर-पेंग ले रहे थे। कब सूरज डूबे, आधी रात बीते, चाँद उगे, कृष्ण भगवान जन्मे और हम फके-पर-फके पजनी फाके—हमारी अधीरता का क्या कहना?

हम सात-आट बच्चे थे। एक दो लडकियाँ भी थी। देव भी था। बिना उसके कौन पेड पर चढ कर रस्सी लटकाता और उतने जोर से पेंग भी कौन देता?

पेंग-पर-पेंग। कभी गाना। कभी हाहा-हीही।

सांप! सांप!!—एक लडकी चिल्ला उठी। वगीचे से सटी जो वँसवारी थी, उसमें एक जोडा गेहुअन रहता है, यह प्राय सुन रखा था हमने, लेकिन, उस मध्य दुपहरी में, जव हम इतने लोग इकट्ठा होकर कोलाहल कर रहे थे, सांप निकलेगा, इसकी तो कल्पना ही नही थी। लडकी की आवाज के साथ ही हमारी नजरे उस ओर दौड गईं, जिधर उसकी कांपती तर्जनी इशारा कर रही थी। वाप रे—सवके मुँह से निकला, और कई तो वेतहाशा भागे। घवरा तो हम सभी गये थे। शायद भादो की इस विना वादल की सूर्य-किरणो की असीम गर्मी से व्याकुल हो, सांप अपनी वांवी से निकला था और कही निश्चिन्त ठढी जगह की तलाश में चला था। जव कुछ वच्चे चीखकर भागे, उनकी चीख सुनकर, वह जहाँ-का-तहाँ अड गया, और सिर उठाकर अच्छी तरह हमें देखना चाहा। उफ, उसकी सूरत! ढाई हाथ से लवाई कम नही। पत्तो से छन कर जो सूर्य-किरणें उस पर पड रही थी, उससे उसका गेहुँआ शरीर दमक रहा था। फन काढे वह खडा था। फन चार इच से कम चौडा क्या होगा? दो खूवसूरत, मादक आँखें चमक रही। जीभें लप-लप करती।

क्या किया जाय, यह सवाल उठने भी न पाया कि देखा, देव एक डडा लिये उस ओर वढ रहा है। मैंने उसे रोकना चाहा। हमने सुन रखा था, दुनिया में साढे तीन ही वीर है। पहला भैसा, दूसरा सूअर, तीसरा गोहुअन और आधा राजा रामचन्द्र। भसा, सूअर और गेहुअन सीधा वार करते, कभी पीठ नही दिखाते रामचन्द्र वीर थे, लेकिन वाली को मारने के लिये उन्होने पेड की ओट ली थी! यो, जो राजा रामचन्द्र से भी ज्यादा वीर—उनमें से एक हमारे सामने खडा है, और उसे छेडने को यह हमारा छोटा साथी देव, एक छोटा-सा डडा लिये, वढ रहा है। छोडो उसे, भागो—हम यह चिल्ला ही रहे थे कि देव सांप से एक लग्गी पर पहुँच चुका था। उसे अपनी ओर आते देख एक वार तो सांप ने फन समेट कर सिर नीचा कर लिया, हमनें समझा अव वह भागेगा। लेकिन, नही, ज्योही देव उससे एक लग्गी पर गया, एकवारगी लगभग एक हाथ सिर उठा, फन को ज्यादा-से-ज्यादा चौडा कर, उसने वह फुफकार-छोडी, जिसने कालीनाग की कृष्ण पर की गई फुफकार की याद दिला दी। फुफकारे छोडता, वह सिर को लगातार हिला रहा था,

जैसे वह गुस्से मे काँप रहा हो। देव, भागो—हमने चिल्लाकर कहा। लेकिन, वह उसका फन देखता, अपना डडा सँभाले खडा था। न साँप एक इच आगे बढता, न देव के ही पैर आगे या पीछे उठते। इधर हमारा शरीर पसीने-पसीने हो रहा। देव की आँखे गेहुँअन की आँखो पर गडी थी।

भागो—हम फिर चिल्लाये। उसी समय देखा, देव अपने डडे को सँभाल रहा है और पलक मारते ही उसने छोटे डडे को इस तरह तौलकर फेंका कि वह ज़ोरो से साँप के फन के ठीक नीचे, जमीन से लगभग एक वालिश्त ऊपर, उसकी गर्दन पर कहिए, तड-से लगा। डडा इस ज़ोर से लगा कि साँप फन-सहित एकवारगी उलट गया। किन्तु, दूसरे ही छन वह सँभलकर फिर डटा था। और, इस वार, मालूम होता, सिर्फ उसकी पूँछ का कुछ इच हिस्सा ज़मीन पर है, नही तो वह पूरा-का-पूरा खडा है—फन फुलाये, झूमता, फुफकारता। मालूम होता, साक्षात् यमराज ताडव नृत्य कर रहा है! देव का हाथ खाली है, साँप कही उसपर टूटा, तो आज वही-का-वही रह जायगा—मैंने सोचा। लेकिन, किसी की हिम्मत जो देव की मदद में यमराज के मुँह की ओर वढे! देव खडा। कही उसे भय से थरथरी तो नही मार गई ?भागो, भागो!

लेकिन, यह क्या? फिर तुरत ही साँप आप ही आप इस तरह ज़मीन पर गिरा कि हमने उसके गिरने की पट्ट-सी आवाज़ भी सुनी। गिरकर वह लगातार पूँछ पटकने और जमीन से थोडा ऊपर सिर उठा-उठाकर फुफकार छोडने लगा। उसके गिरते ही हममे से कुछ की हिम्मत हुई। गुल्ली-डटा खेलने के लिए जो डडे थे, उन्हे लेकर हम आगे वढे। मालूम होता, पहला डटा ऐसा लगा था कि उसकी गर्दन की हड्डी टूट गई थी, लेकिन 'वाई के झोंके मे' वह उठ खडा हुआ था। लेकिन, वाई के वल पर टूटी हड्डी कव तक तनी रहती? वह गिरा और अव अपनी वेचारगी पर सिर धुन रहा था। हमें वढते देख, देव ने हमें रोका और हमारे डडे लेकर उसने खुद किस तरह उसे खेला-खेलाकर मारा! पहले दो-तीन डडे अलग से ही फेंक कर मारे, फिर नजदीक जाकर उसके धड पर कई डडे लगाये। तव डडे का एक हिस्सा उसके मुँह के नज़दीक ले जाता, साँप किच-किचाकर पकड़ता, देव खिलखिलाकर हँसता यो ही वहुत देर तक उस साँप से वह मृत्यु-क्रीडा करता रहा। उसी समय देव के वावा

पेंग-पर-पेंग। कभी गाना। कभी हाहा-हीही।

साँप! साँप!!—एक लडकी चिल्ला उठी। बगीचे मे सटी जो बँसवारी थी, उसमें एक जोडा गेहुअन रहता है, यह प्राय सुन रखा था हमने, लेकिन, उस मध्य दुपहरी मे, जब हम इतने लोग इकट्ठा होकर कोलाहल कर रहे थे, साँप निकलेगा, उसकी तो कल्पना ही नही थी। लडकी की आवाज के साथ ही हमारी नजरे उस ओर दौड गई, जिधर उसकी काँपती तर्जनी इशारा कर रही थी। बाप रे—सबके मुँह से निकला, और कई तो बेतहाशा भागे। घबरा तो हम सभी गये थे। शायद भादो की इस बिना बादल की सूर्य-किरणो की असीम गर्मी से व्याकुल हो, साँप अपनी बाँबी से निकला था और कही निश्चिन्त ठडी जगह की तलाश मे चला था। जब कुछ बच्चे चीखकर भागे, उनकी चीख सुनकर, वह जहाँ-का-तहाँ अड गया, और सिर उठाकर अच्छी तरह हमें देखना चाहा। उफ, उसकी सूरत! ढाई हाथ से लबाई कम नही। पत्तो से छन कर जो सूर्य-किरणें उस पर पड रही थी, उससे उसका गेहुँआ शरीर दमक रहा था। फन काढे वह खडा था। फन चार इच से कम चौडा क्या होगा? दो खूबसूरत, मादक आँखें चमक रही। जीभें लप-लप करती।

क्या किया जाय, यह सवाल उठने भी न पाया कि देखा, देव एक डडा लिये उस ओर बढ रहा है। मैंने उसे रोकना चाहा। हमने सुन रखा था, दुनिया में साढे तीन ही वीर हैं। पहला भैसा, दूसरा सूअर, तीसरा गोहुअन और आधा राजा रामचन्द्र। भैसा, सूअर और गेहुअन सीधा वार करते, कभी पीठ नही दिखाते रामचन्द्र वीर थे, लेकिन वाली को मारने के लिये उन्होने पेड की ओट ली थी! यो, जो राजा रामचन्द्र से भी ज्यादा वीर—उनमे से एक हमारे सामने खडा है, और उसे छेडने को यह हमारा छोटा साथी देव, एक छोटा-सा डडा लिये, बढ रहा है। छोडो उसे, भागो—हम यह चिल्ला ही रहे थे कि देव साँप से एक लग्गी पर पहुँच चुका था। उसे अपनी ओर आते देख एक बार तो साँप ने फन समेट कर सिर नीचा कर लिया, हमने समझा अब वह भागेगा। लेकिन, नही, ज्योही देव उससे एक लग्गी पर गया, एकबारगी लगभग एक हाथ सिर उठा, फन को ज्यादा-से-ज्यादा चौडा कर, उसने वह फुफकार-छोडी, जिसने कालीनाग की कृष्ण पर की गई फुफकार की याद दिला दी। फुफकारे छोडता, वह सिर को लगातार हिला रहा था,

जैसे वह गुस्से में काँप रहा हो। देव, भागो—हमने चिल्लाकर कहा। लेकिन, वह उसका फन देखता, अपना डडा सँभाले खडा था। न साँप एक इच आगे वढता, न देव के ही पैर आगे या पीछे उठते। इधर हमारा शरीर पसीने-पसीने हो रहा। देव की आँखे गेहुँअन की आँखो पर गडी थी।

भागो—हम फिर चिल्लाये। उसी समय देखा, देव अपने डडे को सँभाल रहा है और पलक मारते ही उसने छोटे डडे को इस तरह तौलकर फेंका कि वह ज़ोरो से साँप के फन के ठीक नीचे, जमीन से लगभग एक वालिश्त ऊपर, उसकी गर्दन पर कहिए, तड-से लगा। डडा इस जोर से लगा कि साँप फन-सहित एकवारगी उलट गया। किन्तु, दूसरे ही छन वह सँभलकर फिर डटा था। और, इस वार, मालूम होता, सिर्फ उसकी पूँछ का कुछ इच हिस्सा ज़मीन पर है, नही तो वह पूरा-का-पूरा खडा है—फन फुलाये, झूमता, फुफकारता। मालूम होता, साक्षात् यमराज ताडव नृत्य कर रहा है! देव का हाथ खाली है, साँप कही उसपर टूटा, तो आज वही-का-वही रह जायगा—मैंने सोचा। लेकिन, किसी की हिम्मत जो देव की मदद में यमराज के मुँह की ओर वढे! देव खडा। कही उसे भय से थरथरी तो नही मार गई ?भागो, भागो!

लेकिन, यह क्या? फिर तुरत ही साँप आप ही आप इस तरह ज़मीन पर गिरा कि हमने उसके गिरने की पट्ट-सी आवाज भी सुनी। गिरकर वह लगातार पूँछ पटकने और ज़मीन से थोडा ऊपर सिर उठा-उठाकर फुफकार छोडने लगा। उसके गिरते ही हममें से कुछ की हिम्मत हुई। गुल्ली-डटा खेलने के लिए जो डडे थे, उन्हे लेकर हम आगे वढे। मालूम होता, पहला डटा ऐसा लगा था कि उसकी गर्दन की हड्डी टूट गई थी, लेकिन 'वाई के झोंके मे' वह उठ खडा हुआ था। लेकिन, वाई के वल पर टूटी हड्डी कव तक तनी रहती? वह गिरा और अव अपनी वेचारगी पर सिर धुन रहा था। हमे वढते देख, देव ने हमे रोका और हमारे डडे लेकर उसने खुद किस तरह उसे खेला-खेलाकर मारा! पहले दो-तीन डडे अलग से ही फेंक कर मारे, फिर नज़दीक जाकर उसके धड पर कई डडे लगाये। तव डडे का एक हिस्सा उसके मुँह के नज़दीक ले जाता, साँप किच-किचाकर पकडता, देव खिलखिलाकर हँसता यो ही वहुत देर तक उस साँप से वह मृत्यु-क्रीडा करता रहा। उसी समय देव के वावा

एक ओर से आते दीखे। उनकी चीख सुन कर देव चौंका और झट-पट बार-बार डडे बरसाकर साँप का सिर भुर्ता बना, किलकारियाँ मारता भागा। हम भी उसके साथ भागे।

× × ×

देव के बाबा चाहते थे, देव पढे। गाँव की पढाई जस-तस समाप्त कर वह शहर के स्कूल में भी गया। लेकिन, वहाँ ज्यादा दिनों तक टिक न सका।

गाँव लौटकर वह अपनी घर-गिरस्ती में लग गया। अजीब ढग का विकास हुआ उसका। जिसने जरा छेडखानी की, उससे उलझ गया। बात का जवाब हाथ से, ठेगे का जवाब लाठी से। चाहे चौपाया भैंसा हो या दो-पाया, जिससे भिड गया, बिना नाथे नही छोडा। गाँव के सबसे ऊँचे बाँस की फुनगी के पत्ते वह तोडता, सबसे ऊँची डाल का फल वह चखता। उसकी भैंस हमेशा हरीयरी पाती, उसके बैल बिना जाब्ते के बिचरते। किसीका खेत उजडता हो, तो उजडे—देव को क्या परवा? और, कौन उसके मुँह लगने की गुस्ताखी करे?

उसके चरित्र पर काला धब्बा लगानेवाली कहानियाँ भी थीं। लेकिन न जाने क्यो, मैं हमेशा ही उससे अनुरक्त रहा। कई दिन मामाजी ने डाँटा-डपटा—"क्यो उससे बाते करते हो——मिलते हो, वह बदमाश है, बदचलन है, तुम पढ-लिख रहे हो, ऐसे लोगो की सगत और चाहत अच्छी नही।" जब वह नाराजी में बकते, मैं चुप-चाप सुनता। उनकी बात के औचित्य और सत्यता पर सदेह करने की कोई बात ही नही थी। लेकिन, सब जान-सुनकर भी मैं अपने को उससे अलग नही रख सकता था। क्यो? मैं तब इस तरह के तर्क का आदी भी नही था।

एक दिन शाम का वक्त। मैं छुट्टी में घर आया था। प्रकृति प्रेमी स्वभाव मुझे गाँव से खीच सरेह की ओर ले चला। रास्ते में देव मिल गया। हम दोनो चले। एक खेत में शकरकद की लत्तियाँ इतनी घनी हो गई थी कि उनपर पैर रखने में मखमल का मजा आता था। लत्तियों में जहाँ-तहाँ लाल-लाल फूल भी आ गये थे—मानो हरे मखमली फर्श पर गुलाब की कलियाँ खिली हो। मैं उसपर बैठ गया।—देव, कुछ गाओ।

"खूब! कभी मुझे गाते सुना है?"

"अच्छा, एक कहानी"।

कैसी? आपबीती!—वह मुस्करा पडा। देव में हमने हमेशा यह गुण पाया कि वह झुठ कभी नही बोलता। वह अपनी प्रेम-कथाएँ कहने लगा—देहात के वे 'रोमास' और उन रोमासो के वे अनोखे 'ऐडवेचर'। कब सूरज डूबा, किस तरह किरणें सिमटी, मालूम नही। एकाएक अधकार देख, अब चले कह कर हम चल पडे।

थोडी दूर साथ आये। एकाएक देव चुप हो गया। फिर बोला —"अच्छा, आप मेरा साथ क्यो करते हैं, आपकी शिकायत होती है न?"

"पगला, शिकायत की तुम्हे क्या परवा, ऐसी बातें न किया करो।" वह फिर चुप हो रहा और बडी सजीदगी से बोला—"अच्छा, कोई एक काम आप मुझसे कहिए, जो मैं करूँ। कोई अच्छा काम, जो देश के लिये भी फायदे का हो।"

मुझे याद आया, मैं कभी-कभी देव से देश-दशा पर कुछ बातें कर लिया करता था। मालूम होता, वे बातें उसके हृदय मे गड-सी गई थी। किन्तु आज उसके इस सवाल पर मैं असमजस में पड गया, देव और देश! खैर, कुछ कहना चाहिये, कह दिया—ज्यादा क्या करोगे, खादी पहनो।

लेकिन, खादी तो शहर में ही मिलती है! और कोई शहर यहाँ से २०-२२ मील से कम दूर नही। पर, देव को मानो अपनी इस कैफियत पर कुछ झेंप हुई। बोला—अच्छा, मैं किसी तरह मँगा लूँगा।

देव ने जिस दिन खादी पहनी, गाँव में एक अजीब दिल्लगी रही। लोग आपस में कहते—"सौ-सौ चूहे खाय के बिलाई चली हज को" किन्तु देव के मुँह पर कोई क्या बोलता?

× × ×

सन् तीस का तूफान खत्म ही हुआ था कि बत्तीस की आँधी जोरो पर चल निकली। साढे चार हज़ार बद-दिमागो के साथ मैं पटना कैम्प जेल के मजे ले रहा था।

रोज नये लोगो के झुड आते, पुरानो के जाते। यह आने-जाने की क्रिया इस घडल्ले से जारी थी कि अब उसमें कोई हर्ष-

विषाद नहीं रह गया था। महासागर में कितनी नदियाँ गिरती, कितना जल भाप बनकर उड़ता—वह अपनी ही तरंगों में मस्त, घट-बढ़ का सवाल कहाँ ?

लेकिन, एक दिन जब फाटक में एक परिचित सूरत को भीतर आते देखा और जब पता चला, यह देव है, तब आश्चर्य और आनन्द का ठिकाना न रहा। इधर कुछ दिनों से देव से कम सम्बन्ध रह गया था। मैं लेखक था, सम्पादक था, देशभक्त था, नेता था। अब फुर्सत कहाँ थी कि देव की कोई खोज-खबर भी रहता ?

और, देव जेल में ? यह तो कल्पना भी नहीं हो सकती थी।

किन्तु, आनन्द के उद्रेक में कुछ पूछने की फुर्सत भी कहाँ थी ? उसे अपने ही वार्ड में ले आया। शाम का ही वक्त था। खाने-पीने के बाद तुरत ही वार्ड-बन्दी हुई। भीतर गाँव-घर का हाल चाल पूछते बतियाते हम दोनों को नींद आ गई। हम पास-पास सोये थे। सोये ही थे कि बीच में मेरी नींद टूटी और पाया देव कुछ कराह रहा है—जैसे मर्मान्तिक पीड़ा होने पर धीरे-धीरे, लेकिन बड़े दर्द से, लोग कराहते हैं। देव कोई सपना तो नहीं देखता, बुरा सपना—मैंने झकझोर कर उसे उठा दिया। वह जगा। लेकिन, पूछने पर कुछ बोला नहीं। फिर उसे नींद आई, तो वही बात। एक बार और उठाया। लेकिन, कितनी बार उठाता उसे ?

कल कुनकुन ने, जो उसके साथ आया था, इसका रहस्य बताया।

अब यह देव वह पुराना देव नहीं है।

देव अपने थाने का एकछत्र नेता होकर इस बार यहाँ आया है। नेता ? हाँ। हाँ। हाँ।

लेकिन इस नेतृत्व की कैसी कीमत अदा करनी पड़ी है उसे ?

देव का थाना, जिला-भर में क्या, अपने काम से सारे प्रांत में, प्रसिद्ध प्राप्त कर गया। कांग्रेस-बुलेटिनों में उसकी चर्चा। सत्याग्रहियों की टोलियाँ लगातार सरकार को परीशान और सब-डिवीजन की छोटी-सी सब-जेल को आबाद किये रहतीं। जिले के अधिकारी बड़े घपले में। पुलिस के धावे, जब्तियाँ, जेल, जुर्माने, कुछ भी कारगर साबित न हुए। जबतक खुराफात की जड़ देव नहीं पकड़ जाता,

तवतक सव धर-पकड फिजूल थी, और देव को पकडने की उनकी सारी चेष्टाएँ वार-वार वेकार जा चुकी थी।

किन्तु, पुलिस जो काम हज़ार सरगर्मी दिखाकर और लाख सिर पटक कर न कर सकी, एक दिन देव ने खुद कर लिया। अव थोडा जेल का मज़ा लिया जाय, उसने तय किया। खवर कर दी गई, अमुक दिन थाने पर जुलूस जायगा और नेतृत्व करेगा देव। दारोगाजी को अपनी ताकत पर विश्वास न हुआ। कुछ सशस्त्र पुलिस लेकर इन्सपेक्टर साहव आये—पाँच हाथ का वह भीमकाय इन्सपेक्टर! जुलूस के नेता की हैसियत से देव पकडा गया, कुनकुन वगैरह कई और। थाने की छोटी-सी-हवलात मे सव ठूँस दिये गये! शाम वीती, रात आई, आधीरात। सारा आलम सन्नाटे मे। उसी समय हवालात खुली। देव उठाया गया। वह वगल के कमरे में ले जाया गया। उसके वाद ?

उसके वाद कुनकुन के चेहरे पर गुस्सा था, आँखें सुर्ख हो गई। वह वोला—पूछिए नही, उसके वाद क्या हुआ ? उफ . इन्सपेक्टर ने उफ.

हम उसका गर्जन-तर्जन सुन रहे थे। लगातार तडाक-फडाक सुन रहे थे। किसी के गिरने और उठने की आवाज़ सुन रहे थे। क्या देवजी पर मार पड रही है?—लेकिन वह चिल्लाते तो नही है ?

और यही न चिल्लाना तो उनके लिये आफत हो गई। इन्सपेक्टर अपने चमडे-मढे डडे से, थप्पड से, घूँसे से, गिर पडने पर भारी वूटो से, लगातार प्रहार-पर-प्रहार करता रहा, लेकिन, दवजी चिल्लाते कहा तक, उनकी आँखो में आँसू तक न आये। आज तुम्हे रुलाऊँगा या जान से मार डालूँगा—यह थी उसकी आन, और देवजी अपनी शान पर जान दे रहे थे।

हाँ, जान दे रहे थे! मार खाते-खाते वह वेहोश हो गये। पानी पिला के होश में लाये गये। गेते हो या मरते हो—उस इन्सपेक्टर के वच्चे ने पूछा। देवजी मुस्करा पडे। हाँ, दारोगाजी ने खुद हमसे कहा था, देव-जी मुस्कुरा पडे। फिर क्या था, उसने डडे, लात-घूँसे और वूट के प्रहार शुरू किये। देव फिर वेहोश। वेहोश होकर जव देवजी गिरे, उनकी छाती पर वह वूट-सहित चढ गया और हुमचने लगा। दो तीन हुमच—देवजी के मुँह से खून निकल आया—

विषाद नहीं रह गया था। महासागर में कितनी नदियां गिरती, कितना जल भाप बनकर उड़ता—वह अपनी ही तरंगों में मस्त, घट-बढ़ का सवाल कहां ?

लेकिन, एक दिन जब फाटक में एक परिचित मूरत को भीतर आते देखा और जब पता चला, यह देव है, तब आश्चर्य और आनन्द का ठिकाना न रहा। इधर कुछ दिनों से देव से कम सम्बन्ध रह गया था। मैं लेखक था, सम्पादक था, देशभक्त था, नेता था। अब फुर्सत कहां थी कि देव की कोई खोज-खबर भी रहता ?

और, देव जेल में ? यह तो कल्पना भी नहीं हो सकती थी।

किन्तु, आनन्द के उद्रेक में कुछ पूछने की फुर्सत भी कहां थी ? उसे अपने ही बार्ड में ले आया। शाम का ही वक्त था। खाने-पीने के बाद तुरत ही बार्ड-बन्दी हुई। भीतर गांव-घर का हाल चाल पूछते बतियाते हम दोनों को नींद आ गई। हम पास-पास सोये थे। सोये ही थे कि बीच में मेरी नींद टूटी और पाया देव कुछ कराह रहा है —जैसे मर्मान्तक पीड़ा होने पर धीरे-धीरे, लेकिन बड़े दर्द में, लोग कराहते हैं। देव कोई सपना तो नहीं देखता, बुरा सपना — मैंने झकझोर कर उसे उठा दिया। वह जगा। लेकिन, पूछने पर कुछ बोला नहीं। फिर उसे नींद आई, तो वही बात। एक बार और उठाया। लेकिन, कितनी बार उठाता उसे ?

कल कुनकुन ने, जो उसके साथ आया था, इसका रहस्य बताया।

अब यह देव वह पुराना देव नहीं है।

देव अपने थाने का एकछत्र नेता होकर इस बार यहाँ आया है। नेता ? हाँ। हाँ। हाँ।

लेकिन इस नेतृत्व की कैसी कीमत अदा करनी पड़ी है उसे ?

देव का थाना, जिला-भर में क्या, अपने काम से सारे प्रांत में, प्रसिद्ध प्राप्त कर गया। कांग्रेस-बुलेटिनों में उसकी चर्चा। सत्याग्रहियों की टोलियाँ लगातार सरकार को परीशान और सब-डिवीजन की छोटी-सी सब-जेल को आबाद किये रहती। जिले के अधिकारी बड़े घपले में। पुलिस के धावे, जब्तियाँ, जेल, जुर्माने, कुछ भी कारगर साबित न हुए। जबतक खुराफात की जड़ देव नहीं पकड़ जाता,

तवतक सव धर-पकड फिजूल थी, और देव को पकडने की उनकी सारी चेष्टाएँ वार-वार वेकार जा चुकी थी।

किन्तु, पुलिस जो काम हज़ार सरगर्मी दिखाकर और लाख सिर पटक कर न कर सकी, एक दिन देव ने खुद कर लिया। अव थोडा जेल का मज़ा लिया जाय, उसने तय किया। खवर कर दी गई, अमुक दिन थाने पर जुलूस जायगा और नेतृत्व करेगा देव। दारोगाजी को अपनी ताकत पर विश्वास न हुआ। कुछ सशस्त्र पुलिस लेकर इन्सपेक्टर साहव आये—पाँच हाथ का वह भीमकाय इन्सपेक्टर! जुलूस के नेता की हैसियत से देव पकडा गया, कुनकुन वगैरह कई और। थाने की छोटी-सी-हवलात में सव ठूँस दिये गये! शाम वीती, रात आई, आधीरात। सारा आलम सन्नाटे मे। उसी समय हवालात खुली। देव उठाया गया। वह वगल के कमरे में ले जाया गया। उसके वाद ?

उसके वाद कुनकुन के चेहरे पर गुस्सा था, आँखें सुर्ख हो गई। वह वोला—पूछिए नही, उसके वाद क्या हुआ? उफ . इन्सपेक्टर ने उफ

हम उसका गर्जन-तर्जन सुन रहे थे। लगातार तडाक-फडाक सुन रहे थे। किसी के गिरने और उठने की आवाज़ सुन रहे थे। क्या देवजी पर मार पड रही है?—लेकिन वह चिल्लाते तो नही है?

और यही न चिल्लाना तो उनके लिये आफत हो गई। इन्सपेक्टर अपने चमडे-मढे डडे से, थप्पड से, घूँसे से, गिर पडने पर भारी वूटो से, लगातार प्रहार-पर-प्रहार करता रहा, लेकिन, दवजी चिल्लाते कहा तक, उनकी आँखो में आँसू तक न आये। आज तुम्हे रुलाऊँगा या जान से मार डालूँगा—यह थी उसकी आन, और देवजी अपनी शान पर जान दे रहे थे।

हाँ, जान दे रहे थे! मार खाते-खाते वह वेहोश हो गये। पानी पिला के होश में लाये गये। रोते हो या मरते हो—उस इन्सपेक्टर के वच्चे ने पूछा। देवजी मुस्करा पडे। हाँ, दारोगाजी ने खुद हमसे कहा था, देव-जी मुस्कुरा पडे। फिर क्या था, उसने डडे, लात-घूँसे और वूट के प्रहार शुरू किये। देव फिर वेहोश। वेहोश होकर जव देवजी गिरे, उनकी छाती पर वह वूट-सहित चढ गया और हुमचने लगा। दो तीन हुमच—देवजी के मुँह से खून निकल आया—

विपाद नही रह गया था। महासागर मे कितनी नदियाँ गिरती, कितना जल भाप वनकर उडता—वह अपनी ही तरगो में मग्न, घट-वढ का सवाल कहाँ ?

लेकिन, एक दिन जव फाटक मे एक परिचित मूरत को भीतर आते देखा और जव पता चला, यह देव है, तव आश्चर्य और आनन्द का ठिकाना न रहा। इधर कुछ दिनो से देव से कम सम्वन्ध रह गया था। मै लेखक था, सम्पादक था, देशभक्त था, नेता था। अव फुर्सत कहाँ थी कि देव की कोई खोज-खवर भी रहता ?

और, देव जेल मे ? यह तो कल्पना भी नही हो सकती थी।

किन्तु, आनन्द के उद्रेक मे कुछ पूछने की फुर्सत भी कहाँ थी ? उसे अपने ही वार्ड मे ले आया। शाम का ही वक्त था। खाने-पीने के वाद तुरत ही वार्ड-वन्दी हुई। भीतर गाँव-घर का हाल चाल पूछते वतियाते हम दोनो को नीद आ गई। हम पास-पास सोये थे। सोये ही थे कि वीच मे मेरी नीद टूटी और पाया देव कुछ कराह रहा है —जैसे मर्मान्तिक पीडा होने पर धीरे-धीरे, लेकिन वडे दर्द मे, लोग कराहते है। देव कोई सपना तो नही देखता, वुरा सपना — मैने झकझोर कर उसे उठा दिया। वह जगा। लेकिन, पूछने पर कुछ वोला नही। फिर उसे नीद आई, तो वही वात। एक वार और उठाया। लेकिन, कितनी वार उठाता उसे ?

कल कुनकुन ने, जो उसके साथ आया था, इसका रहस्य वताया।

अव यह देव वह पुराना देव नही है।

देव अपने थाने का एकछत्र नेता होकर इस वार यहाँ आया है। नेता ? हाँ। हाँ। हाँ।

लेकिन इस नेतृत्व की कैसी कीमत अदा करनी पडी है उसे ?

देव का थाना, जिला-भर मे क्या, अपने काम से सारे प्रात में, प्रसिद्ध प्राप्त कर गया। काग्रेस-वुलेटिनो में उसकी चर्चा। सत्याग्रहियो की टोलियाँ लगातार सरकार को परीशान और सव-डिवीजन की छोटी-सी सव-जेल को आवाद किये रहती। जिले के अधिकारी वडे घपले में। पुलिस के धावे, जव्तियाँ, जेल, जुर्माने, कुछ भी कारगर साबित न हुए। जवतक खुराफात की जड देव नही पकड जाता,

तवतक सव धर-पकड फिजूल थी, और देव को पकडने की उनकी सारी चेष्टाएँ वार-वार वेकार जा चुकी थी।

किन्तु, पुलिस जो काम हज़ार सरगर्मी दिखाकर और लाख सिर पटक कर न कर सकी, एक दिन देव ने खुद कर लिया। अव थोडा जेल का मज़ा लिया जाय, उसने तय किया। खवर कर दी गई, अमुक दिन थाने पर जुलूस जायगा और नेतृत्व करेगा देव। दारोगाजी को अपनी ताकत पर विश्वास न हुआ। कुछ सशस्त्र पुलिस लेकर इन्सपेक्टर साहव आये—पाँच हाथ का वह भीमकाय इन्सपेक्टर! जुलूस के नेता की हैसियत से देव पकडा गया, कुनकुन वगैरह कई और। थाने की छोटी-सी-हवलात में सव ठूँस दिये गये! शाम वीती, रात आई, आधीरात। सारा आलम सन्नाटे में। उसी समय हवालात खुली। देव उठाया गया। वह वगल के कमरे में ले जाया गया। उसके वाद ?

उसके वाद . कुनकुन के चेहरे पर गुस्सा था, आँखें सुर्ख हो गई। वह वोला—पूछिए नही, उसके वाद क्या हुआ? उफ . इन्सपेक्टर ने उफ

हम उसका गर्जन-तर्जन सुन रहे थे। लगातार तडाक-फडाक सुन रहे थे। किसी के गिरने और उठने की आवाज़ सुन रहे थे। क्या देवजी पर मार पड रही है?—लेकिन वह चिल्लाते तो नही है?

और यही न चिल्लाना तो उनके लिये आफत हो गई। इन्सपेक्टर अपने चमडे-मढे डडे से, थप्पड से, घूँसे से, गिर पडने पर भारी वूटो से, लगातार प्रहार-पर-प्रहार करता रहा, लेकिन, दवजी चिल्लाते कहा तक, उनकी आँखो में आँसू तक न आये। आज तुम्हे रुलाऊँगा या जान से मार डालूँगा—यह थी उसकी आन, और देवजी अपनी शान पर जान दे रहे थे।

हाँ, जान दे रहे थे! मार खाते-खाते वह वेहोश हो गये। पानी पिला के होश में लाये गये। गेते हो या मरते हो—उस इन्सपेक्टर के वच्चे ने पूछा। देवजी मुस्करा पडे। हाँ, दारोगाजी ने खुद हमसे कहा था, देव-जी मुस्कुरा पडे। फिर क्या था, उसने डडे, लात-घूँसे और वूट के प्रहार शुरू किये। देव फिर वेहोश। वेहोश होकर जव देवजी गिरे, उनकी छाती पर वह वूट-सहित चढ गया और हुमचने लगा। दो तीन हुमच—देवजी के मुँह से खून निकल आया—

साथ ! और, तब तक मुझ में वह ज्ञान भी नही था कि समझूँ कि ये सारी बातें हमारे सडे समाज की घृणिततम मनोवृत्ति की सूचक है !

हाँ, बालगोविन भगत तेली थे। किंतु तेलियो में साधारणत पाये जानेवाला काला रग नही था उनका। मँझोले कद के गोरे-चिट्टे आदमी थे। साठ से ऊपर के ही होगे। बाल पक गये थे। लबी दाढी या जटाजूट तो नही रखते थे, किन्तु, हमेशा उनका चेहरा सफेद बालो से ही जगमग किये रहता। कपडे बिल्कुल कम पहनते। कमर में एक लगोटी-मात्र और सिर में कबीरपथियो की-सी कनफटी टोपी। जब जाडा आता, एक काली कमली ऊपर से ओढे रहते। मस्तक पर हमेशा चमकता हुआ रामानदी चदन, जो नाक के एक छोर से ही, औरतो के टीका की तरह, शुरू होता। गले में तुलसी की जडो की एक बेडौल माला बाँधे रहते।

ऊपर की तस्वीर से यह नही माना जाए कि बालगोविन भगत साधु थे। नही, बिल्कुल गृहस्थ। उनकी गृहिणी की तो मुझे याद नही, उनके बेटे और पतोहू को तो मैंने देखा था। थोडी खेतीबारी भी थी, एक अच्छा साफ-सुथरा मकान भी था।

किंतु, खेतीबारी करते, परिवार रखते भी, बालगोविन भगत साधु थे—साधु की सब परिभाषाओ में खरे उतरनेवाले। कबीर को 'साहब' मानते थे, उन्ही के गीतों को गाते, उन्ही के आदेशो पर चलते। कभी झूठ नही बोलते, खरा व्यवहार रखते। किसी से भी दो टूक बात करने में सकोच नही करते, न किसी से खामखाह झगडा मोल लेते। किसी की चीज़ नही छूते, न बिना पूछे व्यवहार में लाते। इस नियम को कभी-कभी इतनी बारीकी तक ले जाते कि लोगो को कुतूहल होता ! —कभी वह दूसरे के खेत में शौच के लिये भी नही बैठते ! वह गृहस्थ थे, लेकिन, उनकी सब चीज़ 'साहब' की थी। जो कुछ खेत में पैदा होता, सिर पर लाद कर पहले उसे साहब के दरबार में ले जाते—जो उनके घर से चार कोस दूर पर था—एक कबीरपथी मठ से मतलब ! वह दरबार में 'भेंट' रूप रख लिया जाकर 'प्रसाद' रूप में जो उन्हें मिलता, उसे घर लाते और उसीसे गुज़र चलाते !

इन सबसे ऊपर, मैं तो मुग्ध था उनके मधुर गान पर—जो

सदा-सर्वदा ही सुनने को मिलते। कबीर के वे सीदे-सादे पद, जो उनके कठ से निकल कर सजीव हो उठते।

आसाढ की रिमझिम है। समूचा गाँव खेतो में उतर पड़ा है। कही हल चल रहे है, कही रोपनी हो रही है धान के पानी-भरे खेतो में वच्चे उछल रहे है। औरते कलेवा लेकर मेंड पर वैठी है। आसमान वादल से घिरा; धूप का नाम नही। ठढी पुरवाई चल रही। ऐसे ही समय आपके कानो में एक स्वर-तरग झंकार-सी कर उठी। यह क्या है—यह कौन है! यह पूछना न पडेगा। वालगोविन भगत समूचा शरीर कीचड मे लिथडे, अपने खेत मे रोपनी कर कर रहे है। उनकी उँगली एक-एक धान के पौधे को, पक्तिवद्ध, खेत में विठा रही है। उनका कठ एक-एक शव्द को सगीत के जीने पर चढा कर कुछ को ऊपर, स्वर्ग की ओर भेज रहा है और कुछ को इस पृथ्वी की मिट्टी पर खडे लोगोंके कानो की ओर! वच्चे उठते है, मेंड पर खडी औरतो के होठ काँप उठते हैं, वे गुनगुनाते लगती है, हलवाहो के पैर ताल से उठने लगते है, रोपनी करनेवालो की अगुलियाँ एक अजीव क्रम से चलने लगती है! वालगोविन भगत का यह सगीत है या जादू!

भादो की वह अधेरी अवरतिया। अभी, थोडी ही देर पहले मूसलाधार वर्षा खत्म हुई है। वादलो की गरज, विजली की तड़प में आपने कुछ नही सुना हो, किंतु अव झिल्ली की झकार या दादुरो की टर्र-टर्र वालगोविन भगत के सगीत को अपने कोलाहल में डुवो नही सकती। उनकी खँजडी डिमक-डिमक वज रही है और वे गा रहे है "—गोदी में पियवा, चमक उठे सखिया, चिहुँक उठे ना!" हाँ, पिया तो गोद में ही है, किन्तु वह समझती है, वह अकेली है, चमक उठती है, चिहुँक उठती है। उस भरे-वादलोवाले भादो की आधीरात में उनका यह गाना अँधेरे मे अकस्मात् कौन्ध उठनेवाली विजली की तरह किसे न चौंका देता? अरे, जव सारा ससार निस्तव्धता मे सोया है, वालगोविन भगत का सगीत जाग रहा है, जगा रहा है! —तेरी गठरी मे लागा चोर, मुसाफिर जाग जरा!

कातिक आया नही कि वालगोविन भगत की प्रभातियाँ शुरू हुई, जो फागुन तक चला करती। इन दिनो वे सवेरे ही उठते। न जाने किस वक्त जग कर वह नदी-स्नान को जाते—गाँव से दो मील दूर! वहाँ से नहा-धोकर लौटते और गाँव के वाहर ही, पोखरे के

ऊँचे भिन्डे पर, अपनी खँजडी लेकर जा वैठते और अपने गाने टेरने लगते। मैं शुरू से ही देर तक सोनेवाला हूँ, किन्तु, एक दिन, माघ की उस दाँता-किट-किट वाली भोर में भी, उनका सगीत मुझे पोखरे पर ले गया था। अभी आसमान के तारो के दीपक वुझे नही थे। हाँ, पूरव में लोही लग गई थी, जिसकी लालिमा को शुक्र तारा और वढा रहा था। खेत, वगीचा, घर—सवपर कुहासा छा रहा था। सारा वातावरण अजीव रहस्य से आवृत मालूम पडता था। उस रहस्यमय वातावरण में एक कुश की चटाई पर पूरव मुँह, काली कमली ओढे, वालगोविन भगत अपनी खँजडी लिये वैठे थे। उनके मुँह से शव्दो का ताँता लगा था, उनकी अगुलियाँ खँजडी पर लगातार चल रही थी। गाते-गाते इतने मस्त हो जाते, इतने सुरूर में आ जाते, उत्तेजित हो उठते कि मालूम होता, अव खडे हो जायँगे। कमली तो वार-वार सिर से नीचे सरक जाती। मैं जाडे से कँपकँपा रहा था, किन्तु, तारे की छाँव में भी उनके मस्तक के श्रमविंदु, जवतव, चमक ही पडते।

गर्मियो में उनकी 'सझा' कितने ही ऊमसभरी शाम को न शीतल करती! अपने घर के आँगन में आसन जमा वैठते। गाँव के उनके कुछ प्रेमी भी जुट जाते। खँजडियो और करतालो की भरमार हो जाती। एक पद वालगोविन भगत कह जाते, उनकी प्रेमी मडली उसे दुहराती, तिहराती। धीरे-धीरे स्वर ऊँचा होने लगता—एक निश्चित ताल, एक निश्चित गति से। उस ताल-स्वर के चढाव के साथ श्रोताओ के मन भी ऊपर उठने लगते। धीरे-धीरे मन तन पर हावी हो जाता। होते-होते, एक क्षण ऐसा आता कि वीच में खजडी लिये वालगोविन भगत नाच रहे हैं और उनके साथ ही सवके तन और मन नृत्यशील हो उठे हैं। सारा आँगन नृत्य और सगीत से ओत-प्रोत है!

वालगोविन भगत की सगीत-साधना का चरम उत्कर्ष उस दिन देखा गया, जिस दिन उनका वेटा मरा। एकलौता वेटा था वह! कुछ सुस्त और वोदा-सा था, किंतु इसी कारण वालगोविन भगत और भी उसे मानते। उनकी समझ में ऐसे आदमियो पर ही ज्यादा नज़र रखनी चाहिये या प्यार करना चाहिये, क्योकि ये निगरानी और मुहव्वत के ज्यादा हकदार होते हैं। वडी साध से उसकी शादी कराई थी, पतोहू वडी ही सुभग और सुशील थी। घर की पूरी

प्रवधिका वनकर भगत को वहुत-कुछ दुनियादारी से निवृत कर दिया उसने। उनका वेटा वीमार है, इसकी खवर रखने को लोगोको कहाँ फुर्सत! किन्तु, मौत तो अपनी ओर सवका ध्यान खीच कर ही रहती है। हमने सुना वालगोविन भगत का वेटा मर गया। कुतूहलवश उनके घर गया। देखकर दग रह गया। बेटे को आँगन मे एक चटाई पर लिटाकर एक सुफेद कपडे से ढाँक कर रखा है। वह कुछ फूल तो हमेशा ही रोपे रहते, उन फूलो में से कुछ तोडकर उसपर विखरा दिये हैं, फूल और तुलसीदल भी। सिरहाने एक चिराग जला रखा है। और, उसके सामने ज़मीन पर ही आसन जमाये गीत गाये चले जा रहे है! वही पुराना स्वर, वही पुरानी तल्लीनता। घर में पतोहू रो रही है, जिसे गाँव की स्त्रियाँ चुप कराने की कोशिश कर रही है। किन्तु, वालगोविन भगत गाये जा रहे हैं! हाँ, गाते-गाते कभी कभी पतोहू के नजदीक भी जाते और उसे रोने के वदले उत्सव मनाने को कहते। आत्मा परमात्मा के पास चली गई, विरहिनी अपने प्रेमी से जा मिली, भला इससे वढकर आनद की कौन वात? मै कभी-कभी सोचता, यह पागल तो नही हो गये। किंतु, नही, वह जो-कुछ कह रहे थे, उसमें उनका विश्वास वोल रहा था—वह चरम विश्वास जो हमेशा ही मृत्यु पर विजयी होता आया है।

वेटे के क्रिया-कर्म में तूल नही किया, पतोहू से ही आग दिलाई उसकी। किंतु ज्योही श्राद्ध की अवधि पूरी हो गई, पोतोहू के भाई को वुलाकर उसके साथ कर दिया, यह आदेश देते हुए कि इसकी दूसरी शादी कर देना। उनकी जाति मे पुनर्विवाह कोई नई वात नही, किंतु पतोहू का आग्रह था कि वह यही रहकर भगतजी की सेवा-वदगी मे अपने वैधव्य के दिन गुज़ार देगी। लेकिन, भगतजी का कहना था—नही, यह अभी जवान है, वासनाओ पर वरवस कावू रखने की उम्र नही है इसकी। मन मतग है, कही उसने गलती से नीच-ऊँच मे पैर रख दिये तो। नही-नही, तू जा। इधर पतोहू रो-रोकर कहती—मैं चली जाऊँगी तो वुढापे में कौन आपके लिये भोजन वनायगा, वीमार पडे, तो कौन एक चुल्लू पानी भी देगा? मैं पैर पडती हूँ, मुझे अपने चरणो मे अलग नही कीजिये! लेकिन भगत का निर्णय अटल था। तू जा, नही तो, मै ही इस घर को छोडकर चल दूंगा—यह थी उनकी आखिरी दलील और इस दलील के आगे वेचारी की क्या चलती?

वालगोविन भगत की मौत उन्हींके अनुरूप हुई। वह हर वर्ष गगा-स्नान करने जाते। स्नान पर उतनी आस्था नही रखते, जितना सत-समागम और लोक-दर्शन पर। पैदल ही जाते। करीव तीस कोस पर गगा थी। साधु को सम्वल लेने का क्या हक? और, गृहस्थ किसीसे भिक्षा क्यो माँगे? अत, घर से खाकर चलते, तो फिर घर पर ही लौट कर खाते। रास्ते भर खँजडी वजाते, गाते जाते, जहाँ प्यास लगती, पानी पी लेते। चार-पाँच दिन आने-जाने मे लगते, किन्तु, इस लम्वे उपवास मे भी वही मस्ती! अव वुढापा आ गया था, किन्तु टेक वही जवानीवाली। इस वार लौटे, तो तवीयत कुछ सुस्त थी। खाने-पीने के वाद तवीयत नही सुधरी, थोडा वुखार आने लगा। किंतु नेम-व्रत तो छोडनेवाले नहीं थे। वही दोनो जून गीत, स्नान-ध्यान, खेतीवारी देखना। दिन-दिन छीजने लगे। लोगो ने नहाने-धोने से मना किया, आराम करने को कहा। किंतु हँसकर टाल देते रहे। उस दिन सध्या में गीत गाये, किन्तु, मालूम होता जैसे, तागा टूट गया हो, माला का एक-एक दाना विखरा हुआ। भोर में लोगो ने गीत नही सुना, जाकर देखा, तो वालगोविन भगत नही रहे, सिर्फ उनका पजर पडा है!

भौजी

मै ज़िदगी मे पहले-पहल उस दिन पालकी पर वैठा था। भैया की शादी होने जा रही थी। मै शहवाला था। पालकी पर भैया थे, मै था। चार मुस्तडे कहार हमें ढोये जाते। पालकी के भीतर चमकीले गुच्छे लटक रहे, ऊपर कारवोची का काम चमचम कर रहा। आगे-पीछे वाजे वज रहे—ढोल, शहनाई, वाँसुरी, ताशे, सिंघे। सवको मिलाकर एक अजीव ढग का शब्द हो रहा। वगल में वलम लिये और पताके फहराते पायक चल रहे। हमारे वोदल ठाकुर हजाम हमपर चँवर डुला रहे। घोडे तो सवारो को लेकर सर-से आगे निकल गये थे, हाथी के घटे हम सुन रहे थे।

भैया सजे-सजाये थे। रगीन, चकमक कपडे पहने, सर पर ज़री की टोपी दिये। उनके मस्तक पर चदन की अजीव छाप थी, आँखो में काजल था, एक रूमाल से वह, मसें भीगी हुई है जिनपर, अपने उन अधरो को ढाँपे हुए थे। न जाने भैया के मन में क्या-क्या भाव उठ रहे थे? किन्तु मै तो मस्त था अपनी इस पहली वरात-यात्रा पर, इन वाजे-गाजो पर। हाँ, कभी-कभी सोचता, भौजी को भैया से पहले तो मै ही देखूंगा न!

शाम को वरात दरवाजे लगी। अच्छी वरात थी, अच्छा परिछावन हुआ। चूने से पुता हुआ भैया की ससुराल का वह खपरैल मकान कोलाहल से फटा जा रहा था। दरवाजे के भीतरी हिस्सो में स्त्रियो का एक अच्छा-खासा झुड भैया का चुमावन कर रहा था। भैया के हाथो में पान-सुपारी रखे गए, रुपये रखे गये, दही की छोटी मटकी रखी गई। भैया की इस आवभगत पर मेरे मन में कुछ ईर्ष्या जगी ही थी कि एक युवती मेरे गाल पर दही लगाकर ठठा पडी—हँसी की एक तरग-सी उठ गई! सभी स्त्रियाँ—नही युवतियाँ—ठहाके मार कर जोर-जोर से हँस रही थी।

इस हँसी के साथ ही हमारे कानो मे अट्टहासो का एक हजूम आकर टकराया। दरवाजे के वाहरी हिस्से मे सरातियो और वरातियो में दिल्लगियाँ चल रही थी। दोनो पक्ष जवानदराजी मे नही, अट्टहासो के जोर से एक दूसरे को पराजित करने की कोशिशें कर रहे थे। वहुत देर तक हँसी होती रही, किन्तु अन्त में हँसी-हँसी में तनातनी हो गई—मक्खन में मानो रेत मिल गई। वरात मे मेरे फूफाजी भी आये हुए थे। मेरे फूफाजी गोरे खूवसूरत नौजवान थे। चम्पारण मे उनका घर था। उस जमाने में, उनके यहाँ सिर पर जुल्फ रखाने का रिवाज था। शौकिन नौजवान सिर पर लम्वे घुंघराले वाल रखते, जिन्हे कघी से दो हिस्सो में वडी सुघराई से वाँटे रहते। भैया की ससुराल का गाँव, सस्कृति के लिहाज से, वहुत पिछडा था, इसमें तो शक नही। फूफाजी के इस वाल पर किसी ने भद्दा मजाक कर दिया। फूफाजी शरीफ थे, चुप रहे। किन्तु, हमारे पक्षवाले ने इसे वुरा जान लिया—उनके अपमान को अपने सर्वश्रेष्ठ आदरणीय अतिथि का अपमान समझा! वात-वात में वात वढ गई—किसी ने गुस्से में कह दिया, वरात लौटा ले चलो। फिर क्या था, एक अजीव हुरदग मच रहा!

'चलो चलो' और 'घेरो घेरो' का दौरदौरा हुआ। घोडेवाले तो घोडे दौडा कर निकल गये, हाथी को लोगो ने लठ्ठ से घेर लिया। वराती-सराती इस तरह से मिल गये कि समझ में नही आता था, कौन क्या है। हमारी पालकी एक अजीव ढग से चक्कर काट रही थी। कभी एक पक्ष उसे दस गज आगे घसीट ले जाता, तो कभी दूसरा पक्ष दस गज पीछे। विचारे कहार हक्के-वक्के बने हुए थे। कभी-कभी मैं पालकी में से ही लाठियो की खटखट सुनता। यह अजीव

बरात! पहली ही बार यह अजीब अनुभव! खैर, थोडी देर में फिर शाति हुई। मेरे बाबा बडे ही शातचित व्यक्ति थे। उन्हीके प्रयत्न से शाति हुई। बरात जनवासे में आई। जब सब लोग निश्चिन्त हुए, बाबा को कहते सुना—"बुरी जगह पोते की शादी की! भगवान इनकी छाप से इनके बालबच्चो को बचाये।"

× × ×

भारतीय परिवार में भौजी का वही स्थान है, जो मरुभूमि मे 'ओयसिस' का। धधकती हुई बालू की लू-लपट मे दिन-दिन, रात-रात चलते-चलते जब मुसाफिर दूर से खजूरो की हरी-हरी फुनगी देखता है, उसकी आँखें ही नही तृप्त हो जाती, उसके शरीर का रोम-रोम पुलकित और उसकी शिराओ का एक-एक रक्त-बिन्दु नृत्यशील हो उठता है। कुछ क्षणो के लिये उसका सारा जीवन हरीतिमामय हो जाता है, खजूरो की उस झुरमुट में वह मीठे फल और मीठा पानी पाता है। एक दिन वही रहकर वह आनन्द मनाता है, रक्त सचय करता है, फिर ताजगी और नई उमग लेकर आगे बढता है, आगे—जहाँ, फिर वही अनन्त बालुका-राशि है।

भारतीय जीवन में यह जो रूखा-सूखापन सर्वत्र दीख पडता है, उसका कारण ढूंढने में अपना वक्त बर्बाद नही करूँगा। लेकिन, आप जिधर जाइए, इधर-उधर जिधर नजर दौडाइए, उसका राज्य—साम्राज्य पायेंगे। खिचा-खिचा चेहरा, रसहीन नयन, दुबला-पतला शरीर, मुर्झाया मुर्दा-सा मन—यही है भारतीय मानवता का साधारण ढाँचा। जो कम बोले, हँसे नही, मुश्किल से मुस्कुराये, हमेशा अपने इर्द-गिर्द मुहर्रम का वातावरण बनाये रहे, उसकी सज्जनता और शिष्टता की प्रसशा होती है। जिसका खेलकूद में मन लगा, गाने-बजाने का शौक हुआ या नाट्य-प्रहसन की ओर जिसकी प्रवृत्ति हुई, बस, वह लोगो की नजरो से गिरा। मानता हूँ, हम होली खेलते हैं, विजया मनाते है और दीवाली सजाते हैं, किंतु, वे हमारी जिन्दगी के 'पार्सिंग फेज़' हैं। हमारी जिन्दगी के साथ नत्थी है बारहमासा मुहर्रम—मनहूसियत, मुर्दनी!

परिवार को ही लीजिये। पति अपनी पत्नी से बचे-बचे फिरने की कोशिश करता है—पत्नी की शर्म या सकोच का क्या कहना? चुपचोरी से मिलो, होठ-होठ से बाते करो और देखो, हँसी, घूँघट या

रुमाल से वाहर न निकले! वेटी-वेटे अपने पिता-माता के सामने हँसना-इठलाना वुरा समझते है। किसी के घर में अगर कोई वृद्ध पितामह वचे हैं, तव तो मानो सवके मुँह पर ताला लग गया! जवान वहनें भाई के सामने आने-जाने में सकोच करती है, तो भाई भी उनसे अलग-अलग रहने की कोशिश करता है। छोटे भाई की पत्नी की छाया भी वडे भाई पर नही पडनी चाहिए। वहुएँ सास को देखते ही सहम उठती हैं—जेठानी सास न० २ का काम करती है। जो लडकी हँसती-खेलती, चुहले करती या तेज़ी से चलती है, उसकी ज़िन्दगी मुहाल—"तिरिया चचल अति वुरि!" क्या कवि गिरधरदास नही कह गये है?

इस तरह के निरानन्द और निस्पन्द जीवन में भौजी की स्थिति —सचमुच अरव मे हरा-भरा नखलिस्तान! घर-भर मे और कही जो कुछ हो, जहाँ भौजी, वहाँ विनोद और व्यग्य हमेशा मँडराया करते है, रग जहाँ तरग पैदा करता है। किशोरी ननदे और नवजवान देवरो का जमघट—हाहा-हाहा, हीही-हीही—लपट-झपट, उठा-पटक! छोटे-छोटे वच्चे-वच्चियाँ भी जहाँ अपने को रस में शरावोर करने से वाज नही आती!

भौजी आई, मेरा घर भी आनन्दकुज वन गया। भौजी अभी विलकुल किशोरी थी। उनके अवयो पर पूरा रस नही आया था, उनके अग अभी पूरे भरे नही थे। लम्वी पतली छडी-सी! लेकिन सोने की छडी नही—इसे कहने में मै सकोच नही करूँगा। उनका वर्ण द्रविड-आर्य-रक्त के सुन्दर सम्मिश्रण का नमूना था। वर्ण ही नही, गठन भी। उन्नत ललाट, भवे उठी हुई पतली-पतली। काले वालो में घुँघरालापन—जव उन्हे खोलती, तव अजीव लहरदार मालूम होते वे—गिर्दावो से भरी यमुना की धारा! नाक ललाट के नजदीक जाकर जरा चिपक-सी गई, किन्तु उसका अग्रभाग काफी सुन्दर, मोहक! होठ कुछ मोटे, किन्तु चिवुक का रसीलापन उनके इस किंचित् ऐव को ढँक देता। और, उन होठो के भीतर जो पक्तिवद्ध सुन्दर, चमकीले दाँत थे!—जव भौजी हँसती, सचमुच मोती झडने लगते! मुझे अपने वचपन में तो ऐसा ही मालूम होता था।

थोडे ही दिनो में भौजी ने सवको अपने स्नेह-सूत्र में वाँध लिया, घर की वडी-वूढियो की भी वह प्रशसापात्र वन गई। भौजी उनका सेवा-सत्कार करती, उनके आदेशो को सिर-आँखो पर लेती।

भौजी में हुनर भी अच्छे थे। वह वढिया सिलाई करती, कसीदा काढती। जव खाना वनाने लगी, उनकी तारीफ और वढ गई। अच्छा खाना ही नही वनाती, वहुत ही वढिया ढग से परोसती। परोसने की भी एक कला होती है, यह भौजी ने सिद्ध कर दिया। भौजी की तारीफें होती, भैया की माँ, मेरी चाची, फूली नही समाती। ऐसी सुन्दर सुघड पतोहू पाकर भला कौन सास अपने को कृतकृत्य नही समझेगी ?

भौजी का घर हम देवरो का केलि-भवन था। ज्योही गाँव की पाठशाला से छुट्टी मिली, हम दौडे-दौडे भौजी के घर में घुसे। भौजी हँसकर हमारा स्वागत करती, जलपान कराती, सुपारी-लौंग देती, जिनमे मुनक्के भी मिले होते। भौजी मे गप्पे लडती, खेल होते। दिल्लगियाँ होती, गालियाँ होती, हाथापाई और धमाचौकडी भी। भौजी अभी किशोरी ही थी, हम कई देवर मिल कर उन्हे पराजित भी कर देते। कभी-कभी हम मौज में आते, तो उस छोटे से घर मे ही आँख-मिचौनी भी खेल लेते। गृहस्थ का घर था, लम्वा-चौडा—अगल-वगल, जगह-जगह अन्न रखने की मिट्टी की कोठियाँ पडी थी। एक कोने में एक वडा-सा काठ का सदूक था। हम उन्ही की आड में छिपते-छिपाते। एक दिन मुझे एक नई वात सूझी। मै एक कोठी पर चढकर घर की मोटी धरन पर जा छिपा। भौजी घर के कोने-कोने में खोजकर हार गई। कोठियो की ओट में, सदूक के पीछे और नीचे मैं नही मिला, तो उन्होने कोठियो के पेट में भी झाँकना शुरू किया। इसी समय मै धरन पर से अट्टहास कर उठा। वह चौंकी, चकित हुई। तवतक मै कोठी पर होते उनकी गर्दन पर था, वह मुझे लिये-दिये खाट पर आ रही। हँसते-हँसते हम दोनो के पेट में गुदगुदी लग रही थी।

उस साल जो पहले होली आई, उसकी वात मत पूछिये। वसन्तपचमी से होलिका-दहन तक, एक महीना दस दिनो तक, हम रग में शरावोर थे। कही से खेलते-कूदते आये, या तो भौजी ने ही हमारे गालो मे हुदक्का दे दिया या हमने ही उनके गालो पर अवीर मल दी। खास होली के दिन, पहले तो हमने उन्हे खूव मिट्टी-पानी से चहवोच दिया और दोपहर के वाद तो विलकुल रग में ही जैसे डुवो दिया हो। गाँव भर की ननदें और देवर आए थे, सवने अपने मन के अरमान निकाले। सवकी खातिर-वात भौजी ने उसी प्रेमभाव से की। सवकी जवान पर भौजी की तारीफ थी। लोग यह भूल ही

गये कि भौजी उस गाँव से आई है, जिसकी निन्दा करते ही सभी वराती लौट आये थे।

× × ×

इसके दस वरस वाद की वात है!

मै अव शहर मे पढता हूँ। कभी-कभी ही घर पर जाना होता है। घर भी वह पुराना घर नही रह गया – समूचा शीराजा विखर चुका है। एक ही घर मे कई चूल्हे जल रहे है, आपस में वाँट-वखरा हो चुका है। चाचा और भैया भी जुदा हो चुके है, भौजी भी हमसे अलग है। उनकी सास, मेरी चाची मर चुकी है, अव भौजी ही अपने घर की मालकिन है। उनकी गोद में एक वच्चा है—मेरा प्यारा भतीजा।

लोगो के चूल्हे ही नही अलग हुए है, दिल भी जुदा हो चुके है। न वह प्रेमभाव है, न वह शील-स्वभाव। सारा घर कलह मे फँसा हुआ है। मर्द तो भर-दिन काम-धधे में फँसे रहते है, अलग-अलग खेत-खलिहानो में लगे रहते, किन्तु औरते तो एक ही आगन मे, रूटीन के दो-चार काम—खाना वनाना आदि—करती और वाकी समय में हुक्का पी-पीकर झगडती। खाना वनाते समय भी उनके मुँह वद रखने की तो जरूरत नही होती! कलह-कलह-कलह! सारा घर जैसे नरक वन गया। घर के कुछ वुजुर्ग—जैसे वावा या वडे चाचा—खाने आते, तो कुछ देर के लिये जैसे विरामसधि हो जाती, नही तो कलह का चर्खा दिनरात चला करता, हाँ, निद्रा-माई भले ही उसमें कुछ घटो का व्यवधान कर दें।

और इस कलह में भौजी का स्थान—कुछ पूछिए मत। खानदान और प्रारम्भिक वातावरण का क्या असर होता है, स्पष्ट देखिये। दस वर्षो तक जो वारूद के नीचे ढँपी थी, वह अचानक विस्फोट कर उठी है! जिस मुँह से कभी फूल झडते, अव उससे विषवुझे तीर निकलते। भौजी की गालियाँ— अरे, कलेजे को भी जैसे आरपार कर जायँ। स्त्रियो का सम्मान होना चाहिये, भाभी का दर्जा माता का है—नई रोशनी की पुस्तको में मैंने पढ रखा था। वह मैं, एक दिन धीरज खो वैठा। मै घर के इस कलह से दूर रहने की कोशिश करता फिर मै भौजी के वच्चे को दिन-भर कधे पर लिये चलता। मैंने कल्पना भी नही की थी कि भौजी के वाणो का निशाना मुझे भी होना पडेगा। किन्तु, यह क्या? उस दिन मै खाना खाने गया। देखा आँगन में कुहराम मचा है। मैंने धीमे से भौजी से

कहा—थोडी देर मेहरवानी कीजिये फिर इस घर को नरक तो रहना ही है। वस क्या था, भौजी वरस पडी और एक-पर-एक ऐसे तीर ताक-ताककर कलेजे में मारे कि मै आपे में नही रहा। क्रोध मे पागल हो, वेहोशी मे क्या करने जा रहा था, यह तव पता चला जव, देखा भैया मुझे पकडे हुए है और भौजी घर में किवाड़ वद कर चीत्कार कर रही है।

यह नही कि भैया मुझसे झगड रहे थे या भौजी पर मैंने हाथ छोडा था। मुझे अपनी ओर वढते देखकर पहले तो उन्होने ताने दिए, जैसे मै उनसे रुक जाऊँगा, फिर भागकर घर में वद हो गई और ज़ोर से चिल्ला पडी, जैसे मैंने उन्हे पीटा ही हो। हल्ला सुनकर भैया दौडे हुए आए थे और अव मुझे आँगन से वाहर ले जाने की कोशिश में थे। निस्सदेह, मै अपने गुस्से पर शर्मिन्दा था। यदि भौजी ने अपना वचाव नही किया होता, वक्त पर भैया नही आ गये होते, मुझसे कुछ अक्षम्य अपराध हो गया होता और इसका प्रभाव घर पर क्या पडता, कह नही सकता!

किन्तु, इस घटना से मैंने एक सवक लिया। ज्योही घर का सूत्र मेरे हाथो में आया, मैंने अपने परिवार को उस घर से अलग करने का निश्चय कर लिया। अलग मकान वनाया और उसी मे चला आया। लेकिन, थोडे ही दिनो में मैंने देखा, भौजी साधारण स्त्री नही है। जव-तव वह वहाँ आकर भी अपना दिल का वुखार उतार जाती है। क्या गाँव ही छोड देना पडेगा, कभी-कभी मै सोचता। और शायद वही करता, अगर एक और वात नही होती! और खास उसी वात के लिए आज ये पक्तियाँ लिख रहा हूँ। नही तो, अपनी स्वर्गीया भौजी की जगहँसाई के लिये अपनी कलम उठाने के पहले उसे तोड देना मैं पसद करता!

वह कलम टूट जाय, जो निन्दा के लिये ही उठती है!

हमारे एक दोस्त हैं—एक सम्पादक दोस्त। कट्टर राष्ट्रीयतावादी और हम हैं समाजवादी। अत ऐसे मौके आते ही रहते है कि हमसे नाराज़ होकर अपने पत्र के कालमो को हमें खरीखोटी सुनाने में सर्फ करते हैं। उनकी निर्मम आलोचनाएँ—उफ, हम तिलमिला उठते है!

किन्तु, यह देखा है, ज्योही सरकार ने हमपर प्रहार किया, या किसी दकियानूसी अखवार ने हमारी निन्दा की, वस,

उनकी आलोचनाओ की वैटरी उस ओर मुडी। मानो, उनकी दलील हो—ये हमारे है, हम इन्हें गाली दें या पुचकारें, भला तुम कौन होते हो इनकी ओर आंख उठानेवाले? आंख उठाओगे, तो उसे फोड दूगा। हाँ, कुछ इसी जोश-खरोश से वह टूटते हैं उनकी ओर! और यह कहना फिजूल ही है कि व्यक्तिगत सुख-दु ख में वे इस तरह हमारे शरीक होते है कि यह कल्पना भी नही की जा सकती कि वह हमारे तीव्र आलोचक भी रह चुके है!

मेरी भौजी की भी यही हालत थी।

वह हमें गालियां देती, हमसे झगडे करती, हमारी जिन्दगी हराम किये रहती। किन्तु, मान लीजिए, वह वक-झककर रही हो कि उन्हें खुश करने या उत्साहित करने को कोई स्त्री बीच में टपक पडी और हमें खरीखोटी सुनाने लगी। फिर क्या, भौजी झट उसपर उलट पडी—"किसने तुम्हे कहा, मेरे बीच पडने को? वे बुरे है और तुम—हट मेरे सामने से। सूप हँसे छलनी को, जिसमें सहस्सर छेद! मै तुम्हे नही जानती, डायन कही की। किंतु, मुझपर तुम्हारा डायन-पन नही चलेगा, मै निकाल लूँगी आँख, खीच लूँगी जीभ! ओझा बुला के नगी नचवा दूँगी—मेरे नैहर में है एक ओझा कि देखते ही डायनें कपडे खोल देती है। हाँ!—वे बुरे है, तो तुम्हारा क्या बिगाडा। मै समझ लूँगी उनसे। मै दबैल हूँ, जो किसी की मदद खोजूँ। निकल, यहाँ से " योही क्या-क्या न बकने लगी। वह बेचारी भौचक, चुप, रफूचक्कर हुई, नही तो, हमसे झगडा छूट कर उसीसे जा जुटा। और, इन जवान के झगडो में कौन उनसे पार पाये?

फिर, ज्योही व्रत-त्योहार आया कि पूरी विरामसन्धि हो गई। यो तो भौजी का बदन इस तरह का कसा हुआ था कि वह हमेशा ही अपनी उम्र से छोटी दीख पडती, चालीसवें वर्ष में भी चेहरे पर आब, दाँतो में चमक, छाती पर उभाड, चाल में मस्तानापन। किन्तु, व्रत-त्योहारो में अपने को सजधज कर रखने में कभी न चूकती। होली में जैसे पागल हो उठती। अपने अधवयस—चिन्ता से जर्जर देवरो को खोज-खोज के बुलाती, हाथापाई करतीं, कीचड में उन्हे नहलाती और स्नानादि के बाद उनपर अबीर और अबरख डालती। ऐसी एक भी होली की मुझे याद नही, जब भौजी के हाथ से मिट्टी-पानी अबीर-अबरख पाने और मालपुए-गुलगुले खाने का मौका

नही मिला हो। भौजी का वेटा सयाना हो चला था, लडकी भी काफी वडी हो चली थी। मैंने एक वार कहा—भौजी, अव इन वच्चो को होली खेलने दीजिये, हम-आप देखा करे। भौजी वोली—वाह वबुआ, जवानी ढल गई, तो क्या मन भी ढल गया? वच्चे अपनी होली खेलें, हम अपनी खेलते हैं—उनके अपने दिल, हमारे अपने दिल! भौजी का रोआँ-रोआँ हँस रहा था!

और, वच्चो से उनका कितना स्नेह रहता था?

उन झगडे-झमेलो के वीच भी, मेरे घर आती और मेरे वच्चो को उवटन और तेल लगा जाती, काजल लगा जाती, उन्हे गोद मे लेकर खेलाती-हँसती। एक वार देखा, मेरे वच्चे को गोद में लिये उसकी माँ से झगड रही है, एक वार देखा, मेरे वच्चे को गोद में लिये माँ से झगड रही है, और ज्योही वच्चा रो उठता है, झट अपना स्तन उसके मुँह में रख देती है।

एक दिन इसी तरह का उनका कलह मेरी रानी से चल रहा था कि मेरे वडे वच्चे के रोने की आवाज़ आई। झगडा छोड, यह कहती हुई दौडी—किसने मेरे वच्चे को मारा? वाज-सी झपटती उस ओर गई और मैंने देखा, वच्चे को लिये दौडी आ रही है। वच्चा जोर-जोर से रो रहा था, उसे विढनी ने डंक मारा था। वच्चे को मेरी रानी की गोद में रख, दौडो-दौडी गई, किरासन तेल ले आई गेंदे की पत्तियाँ ले आई और जहाँ डक मारा था, वहाँ लगा दिया—यही देहाती दवा थी। वच्चा थर-थर काँप रहा था। डक ज्यादा ज़हरीला था। उसे वुखार हो आया।

जव तक वुखार रहा, भौजी अपना और मेरा घर-आँगन एक किये रहती। एक जून तो उनके घर में चूल्हा तक नही जल सका। भैया हँसते हुए आये और मेरी रानी की ओर लक्ष्य कर कहा—"झगडा हो तो ऐसा, मेरा खाना वद हो गया।" भैया का भोजन मेरे ही घर पर हुआ।

तव तो, आज जव भौजी नही है, मेरी रानी अपने को उनके दोनो वच्चो को 'धर्म की माँ' समझती है और उन दोनो की शादियो में उसने क्या-क्या न किया? भौजी थी, तो कलह था, उनकी स्मृति ने उस कलह को स्नेह में वदल दिया है।

मै—जव-जव उस सपादक दोस्त के निकट जाता हूँ, इच्छा होती है, उनके चरण छू लूँ, उम्र में मुझसे वुजुर्ग भी हैं। और, जव-जव भौजी की याद आती है, दोनो हाथ मिलकर मेरे सिर से जा लगते हैं—प्रणाम भौजी!

परमेसर

उस दिन अपने दफ्तर में कागज़ के ढेर और काम में बैठा था कि श्रीराम गाँव से आया और कुशलक्षेम पूछने पर बोला—"परमेसर बहुत बीमार है, लबेजान, जानें बेचारा बचता है कि नही!"

परमेसर मेरी पट्टीदारी का ही एक व्यक्ति है, लेकिन न तो इतनी निकटता उससे है, दूसरे उसमें ऐब भी ऐसे हैं जिनको देखते हुए, उसके लिये कामधाम छोडकर दौडा-दौडा बेनीपुर जाने की कल्पना भी नही की जा सकती थी। परमेसर फिजूल-खर्च है, आवारा है। सारे घर को उसने बरबाद कर दिया। कर्ज़ पर कर्ज़ किया, पुश्तानी ज़मीन बेच ली और अत में, उस साल, उसने अपनी बीवी के गहने तक बेच कर गाँजा में फूँक दिये। उसने मेरे परिवार की इज्ज़त में बट्टा लगाया है, अपने घरवालो को सकट और कष्ट में डाला है, खुद भी अब फटेहाली में मारा-मारा फिरता है। कम्बख्त मरे, ऐसे आदमी का मरना ही ठीक—मैंने इस तरह के तर्क से अपने मन को सन्तोष दिया और फिर काम में लग गया। किन्तु, ज्योही शाम हुई, काम की भीड छँटी, थोडा निश्चिन्त हुआ, परमेसर का ध्यान फिर आया और रात की ही स्टीमर से घर लिये रवाना हो गया।

यही है परमेसर का घर। पुराने चौपार मकान के वदले यह राम-मँडैया। एक ही राममँडैया—वही चौकाघर, भडारघर, शयनघर। उसी मे उसकी माँ रहती और उसकी पत्नी भी, भाई भी, वालवच्चे भी, वूढे पिताजी उसी के ओसारे के एक कोने मे, और दूसरे कोने मे, यह परमेसर, पुआल पर पडा है। एक पुराने फटे-चिटे दोहर से हवा के लिए आड कर दी गई है। उसे भीपण रोग ने पकडा है—अतिसार! १०४ डिग्री वुखार और दस्त-पर-दस्त हुए चले जा रहे है। सारा वातावरण गदगी और वदवू से ओतप्रोत। तोभी वेचारी माँ सेवा में लगी, वूढा वाप हाय-तोवा मचाये हुए और वेचारी पत्नी एक कोने में सिमटी, सिकुटी, सहमी, सिसकती!

अतिसार क्यो हुआ—इधर खाने-पीने में दिक्कत थी कई जून का भूखा था। एक सज्जन शकरकद खोद रहे थे। उनके पास हँसते हुए गया, और हँसी-हँसी मे कच्चे शकरकद पेट भर ठूँस लिया! शकरकद पचे नही, दस्त खुल गये, वुखार दौड आया। वह अर्द्धचेतन पडा है, कभी-कभी मुश्किल से आखे खुलती है। आँखें—जो विल्कुल धँसकर कोटर नही, गह्वर मे चली गई है।

तम्वीह का वक्त नही था। निकट के आयुर्वेदीय अस्पताल के वैद्यजी को वुलवाया, उन्होने देखा, दवा दी, किन्तु धीरे से मुझे कहते गये, लक्षण अच्छे नही है, रात निभ जाय, तो कोई आशा की जाय। वह रात नही निभी—परमेसर चलता वना—घरवालो को रुलाकर, गाँववालो को अफसोस मे डालकर!

× × ×

गाँववालो को सिर्फ उसी दिन अफसोस नही हुआ। जव-जव होली, दशहरा, दिवाली, छठ या कार्तिक पूर्णिमा आती है, परमेसर के लिए उसाँसे ली जाती है।

निस्सदेह परमेसर आवारा था, किन्तु, उसकी आवारागर्दी एक ऐसी आग थी, जो खुद को ही जलाती है—खुद को जलाती है, लेकिन, दूसरे को रोशनी और गर्मी ही देती है। वचपन मे हम सवके साथ पढने वैठा, तेज था, किंतु, पढा नही। वडा हुआ, गोरा, छरहरा नौजवान। एक अच्छे घर मे शादी हुई उसकी। कालक्रम से वच्चे भी हुए। उसके पिता विल्कुल सुधुआ थे, अत सयाना

होते ही घर का मालिक वन वैठा। घर की वागडोर हाथ मे आते ही मन की वागडोर ढीली कर दी—मनकी, हाथ की। रोज़ पेठिया जाता, जव-तव शहर जाता, हर मेले मे ज़रूर ही जाता मौका मिले तो तीरथ की दौड भी लगा आता। उसके ही लायक कुछ दोस्त भी मिले उसे। गाँजे के दम लगने लगे। पैतृक सपत्ति स्वाहा होती गई। एक दिन ऐसा भी आया कि परमेसर विल्कुल अकिंचन हो वैठा।

किन्तु, यह अकिंचनता उसके स्वभाव मे परिवर्तन नही ला सकी। गाँजा छूटा, भाँग की चिलम जलने लगी। मेरी ओर भाँग को कोई पूछता नही, इधर-उधर सव जगह उसका जगल-सा लगा रहता है। परमेसर जगल से खूव दलदार पत्तियाँ चुनकर लाता, सुखाता, सँजो-कर रखता, खुद पिता, यारो को पिलाता। उसके दरवाजे पर हमेशा एक ढोलक और कई जोडे झाल वने रहते। शाम हुई नही कि परमेसर की राममँडैया गुलजार हुई। वारह मास, चौवीस पख, उसके दरवाजे पर मगल मचता। भले ही कई-कई दिन तक भरपेट भोजन नही नसीव हुआ हो, किन्तु, इससे गाने-वजाने में कोई अतर नही आता। रसिक स्वभाव! दरवाजे पर कुछ फूल के पेड जरूर लगे होते और एक वडा, गाँव भर से ऊँचा, महावीरी झडा हमेशा लहराता रहता वहाँ। गाँव के वडे-वूढे उसकी निन्दा करते, भर्त्सना करते, गालियाँ देते, किन्तु, वच्चो और नवजवानो का झुड हमेशा उसके आगे पीछे दौडा फिरता।

खेत मे 'तोरी' फूली कि परमेसर की 'होरी' पहुँच गई! सरसो का पीला फूल देखते ही परमेसर ने होली गाना शुरू कर दिया और, जिस दिन वसतपचमी हुई, उस दिन से तो मानो उसे वद-मस्तियो की लाइसेंस मिल गई। पेट काट-काट कर पैसे वचाकर रखता इन दिनो के लिए! डफ पर नया चमडा चढवाया गया, झाल मे नई डोरियाँ लगाई गई, ढोलक पर नया गद दिलाया गया। शाम से ही जो होली शुरू होती, आधी रात के वाद भी हाहा-हूहू से गाँव में कोलाहल मचा रहता।

और ऐन होली के दिन?

भोर मे ही परमेसर के दरवाज़े पर तैयारियाँ देखिये। भैंस का दूध कही से किसी तरह ऊपर करता, चीनी न हो, तो गुड ही सही! वडी सिल पर भाँग की पत्तियाँ लोने-के-लोने पीसता, पिसवाता

उन्हे पानी, दूध और गुड मे मिलाता, खुद छक-छककर पीता, यारो को पिलाता! फिर उन्हे लेकर गाँव में निकलता—चाहे गुरुजन हो या छोटे वच्चे—जो उसके सामने आये, उनपर कीचड पडी। कोई नाराज़ हो या गलियाँ दें, परमेसर को क्या परवा? होली के दिन की गालियाँ तो आशीर्वाद होती है न। गाँव भर को भथभूथकर वह सरेह मे निकलता। जो पथिक उस दिन मेरे गाँव की सीमा से निकले, उनकी तो दुर्गत ही समझिये। कीचड, गोवर, पानी—वस, सिर पर से पैर तक उन्हे नहलाया गया। इस कीचड उछाल में अजव धमाचौकडी मचती। कोई इधर भागा जा रहा, कोई उधर दौडा रहा—ललकारे दी जा रही हैं, हँसी के फव्वारे छूट रहे। इस तरह दुपहरिया आई। तव सव पोखरे में पहुँचे। वहाँ खूव उभक-चुमक हुई। तव घर!

भोजन करके परमेसर की होली-मडली तैयार हो गई। परमेसर अपने हाथ में डफ लेता। नशे के मारे आँखे लाल वनी हुई और अवीर से उसके चेहरे और शरीर ही की क्या वात, सिर के वाल तक लाल वन रहे। वीच मे परमेसर का डफ—चारो ओर झाल, करताल, झाँझ लिये गाने-वजाने वाले, जिन्हे अपार दर्शन घेरे रहते। परमेसर क्या सिर्फ डफ ही वजाता? निस्सन्देह उसके हाथ ताल पर डफ पीटे जाते, किन्तु, उसके तो अग-अग मानो गा-वजा रहे! उछलता, कूदता, नाचता, हाहा करता—परमेसर केंद्र में ही नही था, वह इस साजसज्जा का पूरा केद्र-विंदु था। गाँव के घनी, गरीव एक-एक के दरवाजे पर गाता, वजाता, स्वाँग भरता, अन्त में वह शिवमन्दिर जाता और वहाँ से वडी रात वीते चैत गाते लौटता!

परमेसर के वाद भी मेरे गाँव में होली होती है, किन्तु वैसा रग कहाँ जम पाता?

यो ही दसहरे की दसो रात मे वह गाँव में कोलाहल मचाये रहता। मेरे गाँव में इन दसो रात में ओझा लोगो द्वारा भूत खेलाने का रेवाज था। अव करीव करीव खतम हो रहा है। किन्तु, इस मृत-प्राय चलन में परमेसर ने मानों जान डाल दी थी। अपने दरवाजे पर गाँव-भर के ओझो को नेवता देकर वुला लेता। वीच में धूप जल रही है। धूप के सामने सातो वहन दुर्गा के नाम पर सात जगह चावल, सेंदूर और ओडहुल के फूल एक पक्ति मे रख दिये है। उस पक्ति के आगे एक वेंत की लाल छडी है। ओझा लोग गीत गा रहे हैं,

झाँझ बजा रहे हैं। गीत का स्वर उठान की आखिरी चोटी पर पहुँचा नही कि उनमें से किसी न किसी के शरीर पर कोई भूत—ब्रह्म, चुडैल, देवी आदि कई कोटि है उनके—आया। भूत आते ही ओझा शरीर हिलाने लगे, पहले धीरे-धीरे, फिर ज़ोर-ज़ोर से। शरीर हिलाते-हिलाते वेंत उठाई और उस वेंत से अपने शरीर पर तड-तड लगे मारने ओझा वेत से शरीर को पीटे जा रहा है और लोग कह रहे हैं—देखो महाराज, घोडा कमज़ोर है, ज़्यादा पिटाई मत करो। वडी आरजू मिन्नत के वाद भूत महाराज को दया आई, तो छडी फेंक ओझा केहुनी ज़मीन पर पटकने लगे—यहाँ तक कि ज़मीन खोद दी। वत्ती जला के मुह में चवा जाना, हाथ पर धधकती आगवाली ढकनी रख लेना आदि करतव भी दिखाये जाते, और अत मे 'भेंटी' ठीकी जाती—मन की वात कह कर, उसकी पूर्त्ति के उपाय वताकर भूत चला जाता! भूत आते ही दर्शक-मडली में खलवली मच जाती—अजव-अजव प्रश्न किये जाते, चीजें माँगी जाती। परमेसर के हाथ में मानो भूतो का सूत्र हो—जिस ओझा पर जिस भूत को चाहे वह मँगा सकता था।

कभी-कभी वह खुद अपने ही पर भूत वुलाता। उसके भूत अजव किस्म के होते, नये हावभाव करते, नई वोलियाँ वोलते, और उनके आशीर्वाद ऐसे होते कि सुनते ही लोग लोटपोट हो जाते। प्राय परमेसर के भूत से ही मजलिस खत्म होती—क्योकि वह खाँव-खाँव कर लोगो पर—खासकर वच्चो पर टूटता! भगदड मच जाती—हँसते-हँसते, परमेसर की यशोगाथा गाते, लोग घर आते।

दीवाली कोई सजावे, लुकाठी भाँजने का इन्तज़ाम वह करता। वाँस के कोपलो के सूखे वोकले इकट्ठे कर वाँस की ही कमाचियो में उन्हे गूथ लेता और शाम होते ही उनमें आग लगाकर अपनी मडली के साथ समूचे सरेह को जगमग कर डालता। यो ही होली के होलिका-दहन का प्रवध भी वही करता। गाँव भर के पुआल, सरकडे, डठल आदि इकट्ठा कर एक महान टीला वना देता। जो लोग सीधे नही देते, उनकी चीज़ें चोरी भी करा लेता और उसी पर डाल देता। प्राय वह खुद ही उसमे आग लगाता और तरह-तरह के कुतूहलो से उसे जलाता, वुझाता!

कार्तिक-पूर्णिमा—वस, परमेसर अपनी मडली के साथ गगा-स्नान को चला। स्टेशन पर आया, टिकट कौन कटाता है! जव

पैसे रहे, तो भी टिकट कटाना उसकी शान के खिलाफ था, अव तो पैसे प्राय रहते ही नही। रास्ते भर टिकट चेक करनेवालो मे आँखमिचौनी हुई जा रही । स्टेशन पर पहुँचने के पहले ज्योही गाडी धीमी हुई कि रफूचक्कर। कदाचित स्टेशन पर पहुँच गया, तो तार के घेरे फाँद-फूँद कर निकल चला। कभी धक्कमधुक्की भी हो गई, तो कभी मारपीट भी कर ली। परमेसर के खयाल मे म्लेच्छ को पैसे दे देने के वाद गगास्नान का कोई महत्त्व नही रहता।

पलेजाघाट से लेकर सोनपुर के मेले तक परमेसर क्या-क्या न तमाशे करता? कभी सिर पर त्रिपुड चन्दन किये, गगा किनारे, वह स्नानार्थियो को सुफल पढा रहा है। कभी मडली के वीच में परमहस साधु वना वैठा, लोगो की मनोकामना सिद्धि के लिए, भभूत वाँट रहा है। कभी वह ओझा वना कितनी ही कुल-कामिनियो की गोद भर रहा है। इन तमाशो से जो पैसे मिल गये, मडली भर में मिठाइयाँ वँटी, गाँजे उडे। इन तमाशो में प्रवचना का भाव कभी नही था, था तो सिर्फ मनोरजन का, आमोद-प्रमोद का। प्रवचना तो उसमें थी ही नही—अगर यह होती, तो वेचारे की यह दुर्गत क्यो होती? वह उन लोगो में था, जो दुनिया में हँसने-हँसाने के लिए ही आते है और हँसते-हँसाते ही चल देते है।

× × ×

इधर, आखिर में, जव उसकी हालत वडी खराव हो गई थी, एक दिन मैंने उसे वुलाकर वहुत समझाया था—क्योजी, यह क्या कर रहे हो? अरे, अपनी ओर नही देखो, अपने माता-पिता की ओर ही तो ध्यान दो, यह भी नही तो अपने वाल-वच्चो की ही जिम्मेवारी समझो। तुम कोई कुदजहन आदमी नही, तुममें काफी अक्ल है, वुद्धि है—उससे काम लो। खेती-वारी में मन नही लगता, तो कोई दूसरा रोजगार देखो, शहर में कोई छोटा भोजनालय ही खोल दो, खा-पी के कुछ पैसे बच ही जायेंगे। मैंने कई ऐसे आदमियो के उदाहरण भी दिये, जो ऐसे छोटे-छोटे रोज़गारो से अपनी और अपने परिवार की परवरिश चला रहे थे। उस समय तो कुछ नही बोला,—कुछ दिनो के वाद सुना, परमेसर ने आखाडाघाट पर एक भोजनालय खोला है और इस भोजनालय के लिए, उसके पास—नही नही, उसकी पत्नी के पास—जो आखिरी धन—सोने का कठा था, उसे वेंच लिया है।

कठा वेचने की वात सुनकर मै चौंका, किन्तु, फिर सोचा, शायद यही प्रेरणा रूप में उसे उन्नति की ओर ले जाय। ऐसे उदाहरण मिलते है। किन्तु, मेरी यह धारणा गलत निकली। थोडे दिनो तक तो उसका कारवार अच्छा चला, किन्तु, हाथ मे पैसे आते ही फिर भाँग की जगह गाँजे ने ले ली और एक कारण तो उसने अजीव ही वतलाया—

"चाचा साहव, खिलाना तो वडा अच्छा लगता है, किन्तु, खिलाने-पिलाने वाद, कटाह की तरह, पैसे के लिये पीछे पड जाना, यह तो वडा कठिन काम है। इसमें शक नही कि कुछ पैसे मैने गाँजे में फूँके, किन्तु मेरे ज्यादा पैसे तो खानेवालो के ज़िम्मे रह गये! अच्छा, क्या हुआ—उस जन्म मे वे ताड के पेड होगे और मैं पीपल वनकर उनकी छाती पर पैदा होऊँगा! खूव वसूल करूँगा, उनसे। कैसा—चाचाजी?" वह हँस पडा था, खिलखिल, खलखल।

चाचाजी गुस्से में! वोले—"और, उस वेचारी का कठा भी तुमने वरवाद कर दिया!"

"कठा—कठा क्या होगा? अव तो आपही कहते है, सवलोग वरावर होगे न? सवके कठे होगे, तो क्या आपलोग उसके लिए नही वनवा देंगे? और, आपलोगो का राज न भो हो, तो यह करिया-मुसहर की जोरू कौन कठा पहनती है? चाचाजी, सुख मिलता है या तो तकदीर से, या मेहनत से। मेहनत मुझसे वनती नही, तकदीर अच्छी नही है—फिर, भाँग पीकर हाहा-हीही करना और इसी हँसी-खुशी में जिन्दगी गुजार देना—वस, यही मुझसे होगा, मेरे लिये चिन्ता मत कीजिए "

मै गुस्से मे चूर उसे कुछ कहने ही जा रहा था कि वह धीरे से उठा और हँसता हुआ—मालिक है सियाराम, सोच मन काहे करे—गाता चलता वना! मानो मेरी वुद्धिमानी पर व्यग्य कसता!

बैजू मामा

आज भी, मेरा खयाल है, अगर आप पटना जेल में जाइए और किसी पुराने क़ैदी, वार्डर या जमादार से वैजूमामा के वारे में पूछिए तो वह एक अजीव ढग की हँसी हँसकर आपको उनकी एक-दो कहानी ज़रूर सुनायेगा। वैजूमामा पटना जेल की एक खास चीज है। लगभग तीस वर्षों से वह जेल को आवाद किये हुए है। १९३०, ३२, ३७, ३८, ४०, जव-जव मै पटना जेल पहुँचा हूँ, तव-तव उनके शुभ दर्शन हुए है, उनसे वाते की है, खूव हँसा हूँ और हर वार की हँसी के वाद एक अजीव करुणा का अनुभव मैंने किया है।

जव मैंने कहा कि वह तीस साल से इस जेल को आवाद किये हुए हैं, तव आपने यही सोचा होगा, या तो वह कोई 'दामुली' कैदी है—खून करके आये है या डाका डालके आये है। या कोई शोहदा जनाकार है! या कम-से-कम आदतन अपराधी तो जरूर है! लेकिन मै दावे के साथ इन सभी आरोपो का खडन कर सकता हूँ। उनके चेहरे या चाल-ढाल से, कही से भी उनमें आप खूँखार या मुजरिम

होने का कोई चिह्न पा नही सकते। तो भी वह जेल मे है और तीस वर्षों से हैं। कैसा आश्चर्य ?

वह हर वार एक ही अपराध में आते है, जिसमें आज तक एक बार में दो साल की कैद से ज्यादा की सज़ा उन्हे नही मिली है। ज्योही छूटकर जाते है, उसी अपराध को दुहराते है और फिर एक दो साल की सज़ा लेकर पहुँच जाते है। वह अपराध क्या है ? चोरी ! आप सोचते होगे, जरूर वह पक्के चोर हो गये होगे, उन्होने गैग वना लिया होगा, वडे-वडे हाथ साफ करते होगे, जैसाकि जेल मे एक-दो वार आकर साधारण चोर भी उस्ताद वन जाता है। लेकिन अगर वह इस कोटि के चोर होते, तो मुझे उनपर लिखने की ज़रूरत नही होती ! मुझे अपराध-शास्त्र से कोई दिलचस्पी नही कि उनपर अनुसधान करता !

वैजूमामा एक अजीव चोर है। चोरी में तीस साल की सजा वह भुगत चुके, लेकिन अभी तक तीस रुपये वह एक वार कभी नही पा सके; नही, तो, उनके ही कथनानुसार, आप उन्हे जेल में नही पाते। और 'कवीर' के इस दोहे के अनुसार —

सिंहन के लेहडे नही, हँसन की नहिं पाँत,

लालन की नहि वोरियाँ, साधु न चले जमात—

उन्होने आज तक कोई जमात भी नही वनाई ! तो वह क्या सचमुच साधु है ? छी-छी, मै एक पुराने चोर को साधु कहूँगा ? ऐसी, इतनी वडी, गुस्ताखी करके मै साधु-समाज मे कौन-सा मुँह दिखला सकूँगा !

× × ×

मै ऊँची श्रेणी का कैदी था, इस जेल में ऐसे लोगो की सुख-सुविधा की कोई खास जगह नही होने के कारण, मुझे अस्पताल मे ही रखा गया था। एक दिन मैं अस्पताल की ही छोटी-सी वगीचे के वीच, छोटे-से आम के पेड की छाया में वैठा कलम घिस-घिस कर रहा था, कि देखा एक वूढा मरीज़ कम्वल ओढे उस ओर आ रहा है। वह धीरे-धीरे आया, कमजोरी के कारण डगमगाता हुआ ! फूल की क्यारी में वैठ गया—फिर एक वार हसरत की निगाह से चारो ओर उसने देखा और कम्वल के नीचे से एक खुरपी निकाल वह धीरे-धीरे इधर-उधर उग आई घासो की निकौनी करने लगा ! थोडी

देर ही वह निकौनी कर पाया होगा कि अस्पताल का मेट हाथ में दवा की प्याली लिये उसे ढूंढता हुआ वहां पहुँचा और उसे निकौनी करते देख चौखला उठा—मामू, तुम इस वार मरके रहोगे!

वूढा कैदी सिटपिटा गया। खुरपी छोड दी, कम्वल सम्हाला, दवा के लिए हाथ वढाया। हाथ कांप रहा था, लडखडाई जवान से उसने मिन्नत के शब्दो में मेट से कहा—माफ करना भैया, दवा दो!

"दवा दूं, खाक? दवा खाकर क्या होगा? तुम्हे क्या पडी है भला, जो खुरपी लेकर आ वैठे यहां? जाय भाड में यह वगीचा।"

"हे, हे, यह क्या कहते हो? देखते नही चार दिन मै वीमार रहा की इतनी घासफूस उग आई!"

"मामू, तू कैदी है, या सरकार का वैल? पुराने कैदी की शान तूने धूल में मिला दी? क्या हम जेल में काम करने आते है?"

"मेट भैया, तुम ठीक कहते हो। विल्कुल ठीक। जेल का सत्यानाश हो, हाकिमो का सत्यानाश हो। लेकिन, प्यारे, मै क्या करूँ? न मुझसे वैठा जाता है, न इन फूलो की दुर्गत देखी जाती है। माफ करो, दवा दो—उफ, जाडा लग रहा है!"

वीमार कैदी की आँखो में अव आँसू थे—ऐसे आँसू, जो जवर्दस्ती आँसू वसूल करते है! मेट की आँखो भी उवडवा आई। तुम इस वार मरोगे, मामू!—कहकर उसने दवा की प्याली उसके हाथ मे दी। हाथ के कम्पन से कुछ दवा उसकी ठुड्ढी पर गिर गई, कुछ गले के नीचे गई। दवा पीकर उसने एक वार थूक फेकी और फिर वैठा नही रह सका, कम्वल ओढे, वही लुढक गया। थोडी देर के वाद वह फिर उठ वैठा। एकवार फिर उसने सभी पेड-पौधो पर हसरत भरी निगाह डाली और खुरपी हाथ मे ले अस्पताल की ओर चलता वना। इस वार जाते समय मैन गौर से उसकी ओर देखा—साठ साल की उम्र, ताँवे का रग, चेहरे पर झुर्रियाँ, वाल एक-एक सफेद, लेकिन इस वीमारी में भी, जव पैर डगमगा रहे थे, वह तनकर जा रहा था, जैसे वह एक नौजवान हो!

× × ×

स्वभावत मै उस कैदी की ओर आकृष्ट हुआ। वह वैजूमामा थे। इस जेल के कैदियो के मामा, वार्डरो के मामा, जमादारो के मामा—यो कहिए, तमाम पटना जेल के मामा!

अव मै वैजूमामा के साथ घुलमिल गया। उनकी वीमारी अच्छी हो गई। वह अपनी खुरपी-कुदाल से दिन भर झगडते रहते और मैं उन्ही की वसाई वगीचे मे एक आम के पेड के नीचे वैठ कर उनकी मेहनत-मशक्कत देखता रहता। जव वह थक जाते, मेरे पास आ जाते। न वह वीडी पीते, न खैनी खाते। मै उनका क्या स्वागत करता भला? जेल का सबसे वडा स्वागत-सत्कार इन्ही दो नायाव चीज़ो से है। खैर, वह मेरे नज़दीक पहुँचकर मुझसे 'सुराज' और 'गान्हीवावा' के हाल पूछते और मैं धीरे-धीरे उनकी रामकहानी जानने की कोशिश करता। धीरे-धीरे—क्योकि देखा, वैजूमामा अपनी ज़िन्दगी को वन्द किताव वनाकर ही रखना चाहते। साधारण मुज़रिमो की तरह अपनी कहानी वढा-चढाकर कहने की वात तो दूर रहे, जव वडी खोद-खाद के वाद कुछ कहते भी तो कहते-कहते शर्मीली लडकी की तरह वीच में ही रुक जाते और उनके झुर्रीदार गालो के रग में भी कुछ तव्दीली आ जाती! कभी-कभी झुँझलाकर कहते—वावू, यह पाप की कहानी क्या सुनते है आप? चोर-वदमास की वाते कही सुनी जाती है?

लेकिन उनकी ज़िन्दगी की एक एक कडी आखिर मैंने जोडी ही।

वैजूमामा इसी पटना जिले के वाढ सव-डिविजन के है। एक साधारण किसान थे। एक वार हालत ऐसी हो गई कि वैल के अभाव में उनकी खेती रुक गई। कहीसे तीस रुपये कर्ज लिया और गगा के उस पार वैल खरीदने चले—सुन रखा था, उस तरफ अच्छे वैल मिलते है और सस्ते। गगा पार कर वैल की कई पेठियो मे गये, क्योकि कम-से-कम पैसो मे अच्छी-से-अच्छी चीज़ चाहते थे। इसी दौडधूप में उनके दिमाग पर शैतान का कव्जा हुआ। उन्होने पाया कि उस तरफ लोग गर्मियो मे वैलो को घर के वाहर ही वाँध देते हैं और उनकी कोई खास रखवाली नही करते। पटना जिले में ऐसा नही होता है। शैतान ने उनके कानो मे धीरे से कहा—वैजू, क्यो न इनमें से एक वैल रात मे खोल लो और गगा पार कर जाओ? यह वात उन्हे भा गई—वैल भी हो जायगा, पैसे भी वच जायँगे। खेती भी निभ जायगी, कर्ज भी नही रहेगा। लोग पूछेंगे तो कह दिया जायगा, वैल मोल लिया है! वस, हल्दी लगी न फिटकिरी, रग चोखा—वैजूमामा तैयार हो गये!

एक रात एक गाँव से एक अच्छा-सा वैल खोलकर वह चल पडे—गगाजी की ओर। जिस समय वैल खोलने गये थे, उस समय

तो हाथ ही काँपे थे, अव, जव दिन हो आया, उनका समूचा शरीर काँप रहा था—जैसे कँपकँपी लग गई हो। ठीक से पैर नही उठते। जितने लोगो को देखते, मालूम होता, सव उन्ही की तलाश में है। हर आँख मानो उन्ही को घूर रही, हर उँगली मानो उन्ही की ओर उठ रही, हर कानाफूसी में उन्ही की वात हो रही। दिन ढलने पर वह एक दिहाती सराय के निकट पहुँचे। उनकी नस-नस ढीली पट गई थी। भूख और थकावट से अलग परीशान थे। वैल को एक पेड मे वाँध, दुकानदार से लोटा-डोरी ले, कूएँ पर गये। हाथ-मुह धोया। हाथ-मुह धो ही रहे थे कि देखा, एक दफादार उसी दुकान पर आकर वैठ गया है!—ऐं, क्या मेरी ही यह तलाश में है? क्यो न वैल को छोडकर भाग चलू? तव तो और भी पकड जाऊँगा! क्या मुझसे भागा जायगा? फिर, ऐसा वैल इस जिन्दगी में क्या फिर नसीव हो सकता है? नही, नही वह मेरी तलाश में नही है।

इस तरह सोच-विचारकर वह दुकान पर आये। दुकानदार से दो पैसे के चने लिये—मुह मे रखते थे चना और पेट में फूट रहा था लावा। चने माँगने के समय इनकी मगही वोली सुनी थी, इसलिये जव चने खा रहे थे, दुकानदार ने इनके घर वगैरह के वारे में स्वभावत ही पूछना शुरू किया और घर के वाद वैल की चर्चा आई। वीच में ही दफादार पूछ वैठा—यह वैल तुम्हारा है? अच्छा वैल है! कितने में खरीदा? यह सवाल, और वैजूमामा कह रहे थे, सुनते ही उनके होश गायव हो गये। दो तीन सवाल और, और वह दफादार कूद कर इन्हे पकड चुका था—चोट्टा कही का! यह वैल चालीस रुपये का है वाजितपुर की पेठिया कही वुध को लगती है?

वैल भी गया, उनके पैसे भी छिन गये और पिटाई भी कम नही लगी। समस्तीपुर के मैजिस्ट्रेट ने एक साल की सज़ा दी। सज़ा काट कर निकले, तो फिर कौन-सा मुह दिखाने घर जाते!—"वस में कलक लगाया—"

वस में कलक लगाया?—वैजूमामा आप कौन जात हैं, मैने अचरज में आकर उनसे पूछा। क्योकि उनका चेहरा वताता था, किसी अच्छे घर के वह हैं। इस सवाल वे वह घवरा गये। फिर कहा—"जेल-टिकट में देखिये न? दुसाघ लिखा है!

"जेल-टिकट में जो कुछ लिखा हो, आखिर आप हैं कौन जात? दुसाध तो आप हो नही सकते?"

मेरे वार-वार पूछने पर वैजूमामा कुछ उद्विग्न से हो उठे। उनके चेहरे की झुर्रियाँ और सघन हो गई। चोर का क्या नामधाम या जात-पाँत? चोर, वस चोर है वावू। लेकिन हाकिम के सामने तो कुछ वताना ही पडता है, वस कुछ लिखा दिया! —उनकी आवाज़ में एक हार्दिक पीडा थी।

"तो क्या आपका यह नाम भी नही है?"

अचरज से उनकी आँखें जैसे चमक गई हो, झट वोले—यह आपने कैसे जाना कि मेरा नाम वैजू नही है? वावू, आप जरूर कोई मतर जानते है।

आखिर वैजूमामा ने अपना नाम भी वताया और गाँव भी, जात भी वताई, घर का पूरा हाल भी वतलाया। मैंने तव पूछा—खैर, यह जो कुछ हुआ, लेकिन आप जनेऊ क्यो नही पहनते? वामन क्षत्रि का यह चिह्न तो नही छोडना चाहिए। मेरे इस प्रश्न से जैसे उन्हे दूसरी ठेस लगी हो, कातर स्वर में वोले—अव तो मै भ्रष्ट हो ही गया, जनेऊ को क्यो भ्रष्ट करूँ वावू? एक यही अपराध क्या कम है, जो एक दूसरा भी करूँ? उनके इस जवाव पर मैंने वताना चाहा कि जेल में जो छुआछूत होती है, उससे जात नही जाती, जनेऊ आपको जरूर पहने रहना चाहिए। इसपर उन्होने कहा—मै जेल की वात नही करता। वाहर जो नसापानी करना पडता है।

"तो क्या आप वाहर ताडी-दारू पीते है?

अव तो जैसे उनका धीरज टूट गया हो। भर्राई आवाज़ में वोले—"हाय, वावू, आप कितने भोले है! क्या विना नसा खाये चोरी हो सकती है? निसाचरी काम के लिये पहले निसाचर वन जाना पडता है, वावू!" उद्विग्नता मे ही वह चुपचाप वहाँ से चल दिये।

× × ×

मुझे पता चला था कि उनके घर पर अव भी गिरस्ती होती है—अच्छी गिरस्ती होती है! भाई मर चुके, दो भतीजे है, उनके वाल-वच्चे है! मैंने वैजूमामा को समझाया कि पुरानी वाते भूल जाइए। इस वार छुटिये, तो गगा-स्नान करके अपने घर पर चले जाइए। भतीजो मे सारी वातें कहिए, उनके साथ रहिए। अव वुढापे का शरीर

है, कव जाने क्या हो जाय ? जेल में मरियेगा, मिट्टी की दुर्गत होगी। इस आखिरी वात ने उनपर काफी असर किया ! एक दिन हृदय खोलकर कहने लगा —

क्या कहूँ, वावू, कई वार यही सोचा। जेल से छूटने पर कई वार घर की ओर चला। लेकिन वस्तियारपुर जाते-जाते पैर वँध जाते हैं ! सोचता हूँ, खाली हाथ घर कैसे जाऊँ ? भतीजे तो मानने भी लगेंगे, पर उनकी वहुएँ तो पराये घर की वेटियाँ ठहरी—कहेंगी, यह बूढा कहाँ से टपक पडा ? कुछ लेकर जाऊँ, तो वह भी समझे कि आखिर कुछ लाया तो है ! कम-से-कम एक गाय खरीद करके ही ले चलू। एक गाय—तीस मे तो अच्छी गाय मिल जाती है। लेकिन ये रुपये कहाँ से आवें ? चोर हूँ ही, क्यो न एकाध हाथ और मार लूँ ? किन्तु, जव-जव ऐसा किया, तव-तव, जव तक रुपये पूरे हो, पकड लिया गया और फिर यही का यही।

उफ, तीस रुपये—तीस रुपये ! तीस रुपये में वैल और तीस रुपये में गाय ! और इसी तीस रुपये में एक की जिन्दगी के तीस साल वर्वाद हो गये ! वेचारा तीस के अजीव गोरखधधे मे फँस गया है — मै इस तरह सोच ही रहा था कि वैजूमामा फिर वोल उठे—

"एक वात और है, वावू ! जव-जव वाहर जाता हूँ, दिन तो इधर-उधर देखने-सुनने में कट जाते है, लेकिन ज्योही रात में सोने की कोशिश करता हूँ मालूम होता है, इस जेल के ये सारे पेड-पौधे मुझे बुला रहे है ! यह आम का पेड, ये अमरूद, यह नीम, यह जामुन— सब के सब मेरे ही लगाये हुए है वावू ! मैने ही इनके पौधे रोपे, इनकी थालो मे पानी दिया, निकौनी की। होते-होते आज ये कितने छितनार हो चले है ! और इन वेलो, गुलाबो, गेंदो का खान्दान किसने लगाया, वढाया ? इसी वैजू ने वावू। जव वाहर होता हूँ, रात में ये सव-के-सव मुझे पुकारते-से है ! हाँ, वावू, सच कहता हूँ, नीद नही आती। सोचता हूँ, हाय उस आम की टहनी को न कोई मरोड दे, उस नीम को लोग दातुन कर-करके न सुखा डालें, ये वेले और गुलाब के पौध विना सिचाई -निकाई के न कही बर्वाद हो जायें वस, कुछ इधर-उधर करके दौडा-दौडा पहुँच जाता हूँ।"

जब वैजूमामा कह रहे थे, मुझे लग रहा था, मै कही कोई सपना तो नही देख रहा हूँ ? क्या मै सचमुच जेल में हूँ ? मेरी

वगल में बैठा जो यह सव कह रहा है, क्या यह सचमुच चोर है? क्या चोर का ऐसा ही भोलाभाला चेहरा होता है? क्या उसकी ऐसी ही भोलेभाली वातें हुआ करती है? और क्या उसके ऐसे ही काम होते हैं? जिसने पेड-पौधे से इतनी तदात्मता प्राप्त कर ली है, जिसे पौधे पुकारते, पेड वुलाते है—क्या वह निम्न कोटि का अधम अपराधी हो सकता है? अगर यह अपराधी है, तो निस्सन्देह अपराध शव्द का अर्थ हमें वदल देना होगा!

"और वैजूमामा, अपनी होलीवाली कहानी भी वावू को ज़रूर सुनाना"—जव एक दिन मेट ने यह कहा, तो देखा, वैजूमामा के चेहरे पर हँसी की एक हल्की झलक दौड गई है और उनके दाँत—जो तीस वर्षो से जेल की रोटियाँ चवाते-चवाते आधे-आधे घिस गये थे, लेकिन जिनमें टूटे एक भी नही थे—चमक पड़े। "अरे, मेट भाई, वावू के सामने वेइज्जत मत करो।" उससे कहकर उन्होने इधर-उधर की वातो मे मुझे वहला देना चाहा। लेकिन, फिर भी मैंने उनसे वह कहानी निकाल ही ली!

एक वार सयोग ऐसा हुआ कि वैजूमामा की रिहाई की तारीख ठीक होली ही के दिन पड गई। ठीक होली ही के दिन—जिस दिन, साल-भर में सिर्फ एक ही दिन, जेल में पकवान वनते है! जेल में पकवान! लेकिन आप ताज्जुव न करे, जहाँ भात में भुस्सी मिली होती है और रोटी में ककड, दाल में छिलके-ही-छिलके रहते है और तरकारी के नाम पर घास के डठलो को उसन दिया जाता है, वहाँ के पकवान भी कैसे होगे—समझ जाइए! लेकिन पकवान फिर भी पकवान है! सरसो के तेल में, गुड देकर घुने गेहूँ के आँटे के पके पूए और थोडे दूध में पूरा पानी डालकर उवाली गई खीर—ये पकवान भी कैदियो की जीभ पर कम पानी नही ला देते! महीनो से इसकी प्रतीक्षा की जाती है! वैजूमामा की जीभ भी इसकी कल्पना से कम लार नही टपका चुकी थी कि खवर मिली, उसी होली के दिन उनकी रिहाई होनेवाली है! आह रे, यह क्या गजव हुआ?

वैजूमामा ने जमादार साहव से वहुत ही गिडगिडा कर आरजू-मिन्नत की कि किसी तरह जेलर वावू से कह-सुनकर उनकी रिहाई की तारीख एक दिन और वढा दें, लेकिन जमादार साहव ने पहले समझाकर, फिर डाँट कर कह दिया कि ऐसा नही हो सकता। खैर,

रिहाई का दिन पहुँचा। वह गेट पर लाये गये, तो उन्होंने देखा, पूए बनाने के लिये तेल और कडाह भीतर भेजे जा रहे है। पकवान के इन समानो को देखकर उनकी आखे छलछला आई। जेलर साहब का ध्यान बैजू-मामा की ओर आकृष्ट हुआ—भला, उनको कौन नही पहचानता? जेलर साहब ने समझा, शायद ये आँसू आनन्द के या पश्चाताप के है। कह बैठे—"क्यो बैजू, अब तो फिर नही आओगे न? हाँ, हाँ, मत आना, अब तुम बूढे भी हुए।" उनका यह कहना था कि बैजूमामू की आँखो मे सावन-भादो उमड आये और रुँधे हुए गले मे बोले—

"बाबू, मेरी तकदीर फूट गई, बाबू?"

जेलर साहब, शरीफ मुसलमान जेलर साहब, यह सुनकर घबडा गये। यह क्या बात हुई? पूछा—"क्या हुआ है, बताओ बैजू!" कोई गमी की खबर आई है क्या—वह मन-ही मन सोचने लगे। बैजूमामा बोले—हजूर, आपका इसमें क्या हाथ, मेरी ही तकदीर फूट गई, बाबू।

अरे, क्या हुआ बैजू?—जेलर साहब की उत्सुकता मे अब करुणा की मदाकिनी मिल रही थी। इधर, बैजू मामा की आँखो के बादल मे झडी लग गई और हिचकियाँ लेते हुए बोले—

"हाय सरकार, जब तेल और कडाह भीतर जा रहे है, तो मै बाहर भेजा जा रहा हूँ। भरे बरत के दिन मै निकाला जा रहा "

वह आगे बोल न सके। इधर जेलर साहब ठठाकर हँस पडे और अपनी जेब से एक रुपया निकाल कर, बैजू मामा को देते हुए बोले कि जाओ, बाजार मे इसी के पूए खरीद कर खा लेना। लेकिन, इन चाँदी के चमचम टुकडे का जरा भी मोह उनके मन मे क्यो होने लगा? रुपया जेलर बाबू के पैर पर रख दिया और एक दिन के लिए और जेल मे रखे जाने की विनती की। जेलर साहब ने इस बारे मे अपनी असमर्थता दिखाई। रुपया बार-बार के आग्रह पर भी नही ले कर, धोती की खूँट से आँसू पोछते, बैजूमामा बाहर चले आये।

बाहर चारो ओर होली का हुरदग मचा था। रग-अबीर उड रही थी, गाने-बाजाने हो रहे थे। जेल से जो तीन आने पैसे मिले थे उनका सत्तू खरीद कर बैजूमामा ने खाया और दिन भर इधर-उधर, अन्यमनस्क, तमाशे देखते रहे। शाम को स्टेशन के माल-

गुदाम के सामने जाकर लेट रहे और कुछ अँधेरा होने पर एक बैल-गाडी के निकट बँधे जोडे बैल को खोलकर ले चले। गाडीवान दिन-भर के धूमधडक्के से कुछ ऐसा मस्त होकर सोया था कि उसे कुछ सुध नही रह गई थी! अब बैजूमामा क्या करे? वह खुद चिल्ला कर कहने लगे—ओ गाडीवान, ओ गाडीवान, कैसा बेवकूफ-सा सोया है, और चोर तेरे बैल लिये जा रहे है। 'बैल' यह शब्द कान मे पडते ही गाडीवान चौक उठा और जिस ओर से आवाज़ आई थी, दौडा। उसे दौडते देख बैजूमामा ने भागने का बहाना किया। वह पकड लिये गये, कुछ घुस्से खाये, रातभर हाजत मे रहे और भोर मे फिर जेल में हाज़िर!

जेलभर में हल्ला हो गया—बैजूमामा आ गये, आ गये! किंतु बैजूमामा तो जल्द-जल्द आकर मेट से मिले और कहा—"कहाँ पूए रखे है, लाना तो मेट भाई!" मेट हँस रहा था। बैजूमामा उससे कह गये थे कि दो-एक पूए मेरे लिए जरूर चुराकर रख देना—कल मै जरूर आ जाऊँगा! बैजूमामा अपने 'जरूर" को जरूर ही सार्थक करेगे, इसकी उम्मीद मेट ने नही की थी। ज्योही मेट ने कहा—"पूए कहाँ रखे है?" बैजूमामा की आँखो से झरझर आँसू झडने लगे!—"उफ, इसी पूए के चलते रात उस गाडीवान के उतने घुस्से मैंने बर्दास्त कर लिये! रातभर हाजत मे पूए का ही सपना देखता रहा हूँ, मेट भाई! मुदा, हाय री तकदीर!" अब मेट की आँखें भी छलछला आई थी। उसने जो पूए अपने लिए बचाकर, चुराकर रखे थे, उन्हे लाकर मामा के सामने रख दिया—बैजूमामा उस बासी, काठ-से कडे बन गये तेल के पूए को कुतुर-कुतुर कर खा रहे थे, जो उनकी आँखो के पानी से नरम और नमकीन होते जाते थे।

× × ×

इस बार वह किस तरह जेल आये है वह भी कम दिलचस्प और दयनीय नही है।

इस बार बैजूमामा यह निश्चय कर जेल से निकले थे कि तीस रुपये किसी-न-किसी तरह जरूर जमा करेगे और उन्ही रुपयो से एक गाय खरीदकर अपने भतीजे के पास जायँगे। गाय की डोर पकडे जब वह, लगभग तीस वर्षो के बाद, अपने गाँव में घुसेगे, तो गाँव कैसा दीख पडेगा, लोग उन्हे पहचानेगे या नही, वह किस तरह अपना परिचय देंगे—आदि की कल्पना मे विभोर होते हुए ही उन्होने जेल से बाहर कदम रखा था।

शुरू में मालूम हुआ, इस वार तकदीर पक्ष में है, वडी चोरी में वडा खतरा है! और, खतरा लेने का इस वार मौका नहीं था। इसलिए छोटी-छोटी चोरियाँ तीस रुपये के लिये शुरू की। एक होटल से दो लोटे उडाये, दो रुपये में वेच लिये। एक मदिर के अहाते मे दो कम्वल मार लिये, तीन रुपये उनसे आये। एक वकील साहव के वरामदे से एक शाल उचक लाये, चार रुपये आये। सवसे वडा शिकार एक गोदाम से एक वोरे लाल मिर्च का किया, जिससे उन्हे नकद वारह रुपये मिले। अव वैजूमामा के पास इक्कीस रुपये थे, सिर्फ नौ रुपये की कमी थी। मिर्चे की चोरी सवसे अच्छी। एक दिन जव वह शहर के वाहर शौच को जा रहे थे, उन्होने खेतो में लाल मिर्चे लगे देखे। कौन जाने, शहर की चोरी में किसी दिन पकडा जाऊँ। क्यो न रात में मिर्चे के खेत में पहुँचू और थोडा-थोडा मिर्चा तोडकर वेचता जाऊँ? यही दस-पन्द्रह दिन लगेंगे, लेकिन खतरे से तो महफूज रहूँगा न?—ऐसा सोचकर वह अव प्रति रात मिर्चे के खेत में जाते और एक झोला मिर्चा ले आते और वाजार में किसान की तरह वेच लेते! धीरे-धीरे उनके पास छव्वीस रुपए हो गये—सिर्फ चार रुपये की कमी! हाँ, सिर्फ चार रुपये की।

मजिल के अत में पथिक के पैर तेज से उठने लगते है—उसकी रफ्तार में तेजी आ जाती है! एक दिन वैजूमामा इतने मिर्चे तोड लाये की सवा रुपये मिल गये। अव पौने तीन रुपये की कमी रह गई थी।

तीन—हाय! तीन कितनी वुरी सख्या है! उस रात मामा जव खेत में पहुँचे, इन्हे घेर लिया गया! वेचारे किसान कुछ दिनो से परीशान थे कि यह क्या हो रहा है? उनकी खेती उजड रही थी। कई दिनों से वह धुक्की लगाये हुए थे कि आज चोर को उन्होने देख लिया और दौड पडे। मामा भागें भी तो किस ओर? उन्हे एक अक्ल सूझ गई। जितने मिर्चे तोडे थे, सव झटपट अगल-वगल में फेंक दिये और इस तरह बैठ गये कि जैसे वह शौच से निवृत हो रहे हैं। चारों ओर से लोग घेरे हुए है वह वोलते नही। एक ने कहा—उठते हो या लाठी लगाऊँ?

मामा खडे हो गये—धोती इस तरह किये कि जैसे शौच से उठे हैं! वह मन-ही-मन सोच रहे थे कि शायद मै बच गया कि उसी समय खेत की वगल से जानेवाली सडक से एक मोटर गुजरी और

उसकी दपादप रोशनी में उनके वगल में विखरे मिर्चे दिखाई पडे। और वावू, डर के मारे पेशाव भी तो नही हो पाया था, न?— मुझसे मामा ने हँसते हुए कहा! अव क्या, चोरी साफ-साफ पकड ली गई। मामा फिर थाने में हाजिर किये गये। फिर वही हवालत—फिर वही वाढ का छोटा जेल, फिर वही मेजिस्ट्रेट की अदालत—

लेकिन इस वार विशेपता यह हुई कि किसी तरह पुलिस ने पता लगा लिया कि मामा पुराने मुज़रिम हैं—फलत उसने उनपर सेशन चलान की तैयारियाँ की। नौजवान मैजिस्ट्रेट ने पुलिस की वात मान ली! दारोगा ने गालियाँ देते हुए कहा—"वूढे, इस वार तुम्हे पाँच साल के लिए चक्की पीसनी होगी—

सेशन-जज एक वूढा आदमी था। जव उसने मामा से कसूर के वारे में पूछा, तो मामा नाही नही कर सके। झूठ कैसे वोलते भला? हाँ, एक अर्ज की—

हुजूर, सुनते हैं, सरकार पच्चीस साल काम करने पर अपने नौकरो को पिनसिन देती है? हुजूर भी वूढे हुए, अव पिनसिन पायेंगे। मैंने तीस साल तक जेल में रहकर सरकार का काम कर दिया है! दुहाई सरकार, धरम साछी है, काम करने में कभी कोताही नही की। जेलरसाहव को वुलाकर पूछिए, जमादार साहव को वुलाकर पूछिए। वैजू विना काम किये रोटी नही खा सकता सरकार! अव तीस साल की इस गाढी मिहनत के वाद हुजूर, क्या इस वूढे को भी पिनसिन का हक नही है? दुहाई हुजूर की, दुहाई माँ-वाप की, आप निसाफ कीजिए। हुजूर से निसाफ न मिला, तो यह वूढा और कहाँ जायगा!

यह अजीव दलील थी! किन्तु दिल पर इसका असर भले ही हो, दिमाग पर यह क्या असर ला सकता था भला? और जज तो वँधा है कानून की किताव से। उस कानून की किताव के अनुसार सज़ा के लिए जो जरूरी वाते चाहिए, सव हाजिर! चश्मदीद गवाहियाँ—अपराध की स्वीकृति! वह किताव जज को यह हक कहाँ तक देती कि वह देखे कि अपराध क्यो किया गया, उसमें समाज कहाँ तक अपराधी है, और आदमी कहाँ तक, आदमी के कृतियो मे परिस्थितियो का कहाँ तक हाथ है, आदि-आदि! फिर आदमी के भीतर जो इन्सानियत है, उसे उभडने देने और अपराधी को सही रास्ते पर चलने में मदद करने की ओर ध्यान देना तो उस किताव में जैसे हराम हो। जज वेचारे वूढे थे, सहृदय थे; लेकिन जो किताव उन्हे

रोटी दे रही थी, इस बुढापे को आराम से बिताने में मदद पहुँचा रही थी, उसकी उपेक्षा वह कैसे करते बेचारे? हाँ, उन्होंने शायद कभी शेक्सपीयर की "मर्चेंट ऑफ वेनिस" पढ ली थी, इसलिए अपने 'इन्साफ' पर इस बार 'रहम' का मुलम्मा चढाने से वह नही रुक सके! इस बार बैजूमामा को सिर्फ एक साल की ही सजा हुई।

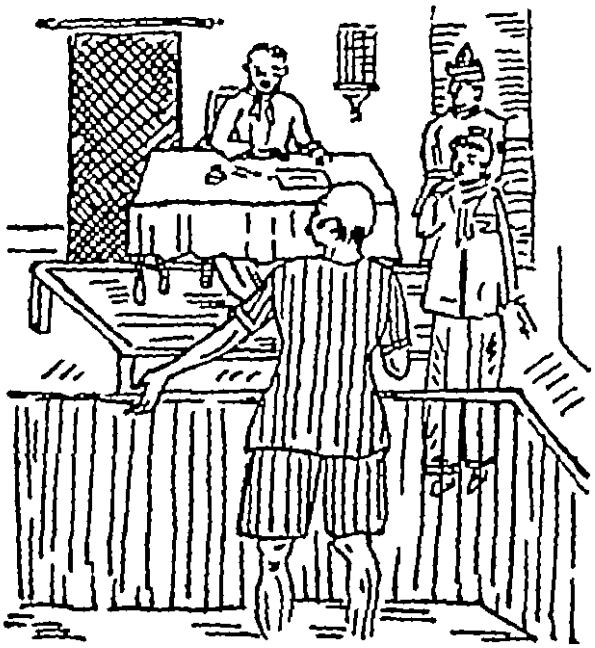

सुभान खाँ

"क्या आपका अल्लाह पश्चिम में रहता है ? वह पूरब क्यो नही रहता ?".

सुभान दादा की लवी, सुफेद, चमकती, रोव वरसाती दाढी में अपनी नन्ही उँगलियो को घुमाते हुए मैंने पूछा। उनकी चौडी, उभडी पेशानी पर एक उल्लास की झलक और दाढी-मूँछ की सघनता में दवे पतले अधरो पर एक मुस्कान की रेखा दौड गई। अपनी लम्बी बाँहो की दाहिनी हथेली मेरे सिर पर सुहलाते हुए उन्होने कहा—

"नही ववुआ, अल्लाह तो पूरब-पश्चिम, उत्तर-दक्खिन सव ओर है।"

"तो फिर आप पश्चिम मुँह खडे होकर ही नमाज क्यो पढते है ?"

"पश्चिम ओर के मुल्क मे अल्लाह के रसूल आये थे। जहाँ रसूल आये थे, वहाँ हमारी तीरथ है। हम उन्ही तीरथो की ओर मुँह करके अल्लाह को याद करते है।"

"वे तीरथ यहाँ से कितनी दूर होगे ?"

"वहुत दूर !"

"जहाँ सूरज-देवता डूवते है ?"

"नही, उससे कुछ इधर ही !"

"आप उन तीरथो में गए है सुभान दादा ?"

देखा, सुभानदादा की वडी-वडी आँखो में आँसू डवडवा आये, उनका समूचा चेहरा लाल हो उठा। भाव-विभोर हो गद्‌गद कठ से वोले —

"वहाँ जाने मे वहुत खर्च पडते है ववुआ ! मै गरीव आदमी ठहरा न ! इस वुढापे में भी इतनी मेहनत-मसक्कत कर रहा हूँ कि कही कुछ पैसे वचा पाऊँ और उस पाक जगह की ज़ियारत कर आऊँ !"

उनकी आँखो को देखकर मेरा वचपन का दिल भी भावना से ओतप्रोत हो गया। मैंने उनसे कहा—

"मेरे मामाजी से कुछ कर्ज क्यो नही ले लेते दादा ?"

"कर्ज के पैसे से तीरथ करने में सवाव नही मिलता ववुआ। अल्लाह ने चाहा तो एक-दो साल में इतने जमा हो जायँगे कि किसी तरह वहाँ जा सकूँ।"

"वहाँ से मेरे लिये भी कुछ सौगात लाइयेगा न ? क्या लाइयेगा ?"

"वहाँ से लोग खजूर और छुहारे लाते हैं।"

"हाँ, हाँ, मेरे लिये छुहारे ही लाइयेगा—लेकिन एक दर्जन से कम नही लूँगा, हूँ।"

सुभानदादा की सुफेद दाढी-मूँछ के वीच उनके सुफेद दाँत चमक रहे थे। कुछ देर तक मुझे दुलारते रहे। फिर कुछ रुक कर वोले —अच्छा जाइये, खेलिये, मै ज़रा काम पूरा कर लूँ। मज़दूरी भर पूरा काम नही करने से अल्लाह नाराज़ हो जायँगे।

क्या आपके अल्लाह वहुत गुस्सवर है ?—मै तुनककर वोला।

आज सुभानदादा वडे जोरो से हँस पडे, फिर एक बार मेरे सिर पर हथेली फेरी और—"बच्चो से वह वहुत खुश रहते है, ववुआ ! वह तुम्हारी उम्र दराज़ करे।"—कहकर मुझे अपने कधे

पर ले लिया। मुझे लेते हुए दीवार के नज़दीक आये, वहाँ उतार दिया और झट अपनी कढनी और वसुली से दीवार पर काम करने लगे।

× × ×

सुभान खाँ एक अच्छे राज समझे जाते हैं। जब-जब घर की दीवारो पर कुछ मरम्मत की ज़रूरत होती है, उन्हे बुला लिया जाता है। आते हैं, पाँच-सात रोज यही रहते है, काम खत्म कर चले जाते है।

लबा, चौडा, तगडा, है बदन इनका। पेशानी चौडी, भवें बडी सघन और उभडी। आँखो के कोने में कुछ लाली और पुतलियो मे कुछ नीलेपन की झलक। नाक असाधारण ढग से नुकीली। दाढी सघन, इतनी लबी कि छाती तक पहुँच जाए—वह छाती, जो बुढापे में भी फैली, फूली हुई। सिर पर हमेशा ही एक दुपलिया टोपी पहने होते और बदन में नीमस्तीन। कमर में कच्छेवाली धोती, पैर मे चभरौंधा जूता। चेहरे से नूर टपकता, मुँह से शहद झरता। भले-मानसो के बोलने-चालने, बैठने-उठने के कायदे की पूरी पाबदी करते वह।

किन्तु बचपन में मुझे सबसे अधिक भाती उनकी वह सुफेद चमकती हुई दाढी। नमाज़ के वक्त कमर में धारीदार लुँगी और शरीर में सादा कुरता पहन, घुटने टेक, दोनो हाथ छाती से ज़रा ऊपर उठा, आधी आँखें मूँद कर जब वह कुछ मत्र-सा पढने लगते, मै विस्मय-विमुग्ध होकर उन्हें देखता रह जाता! मुझे ऐसा मालूम होता, सचमुच उनके अल्लाह वहाँ आ गये हैं, दादा की झपकती आँखें उन्हें देख रही हैं, और ये होठो-होठो की बाते उन्ही से हो रही है।

एक दिन बचपन के आवेश में मैने उनसे पूछ भी दिया—सुभानदादा, आपने कभी अल्लाह को देखा है?

"यह क्या कह रहे हो, बबुआ? इन्सान इन आँखो से अल्लाह को देख नही सकता!"

"मुझे धोखा मत दीजिये, दादा! मै सब देखता हूँ। आप रोज़ आधी आँखो से उन्हे देखते हैं, उनसे बुदबुदा कर बाते करते है। हाँ, हाँ, मुझे चकमा दे रहे हैं आप!"

"मै उनसे बाते करूँगा! मेरी ऐसी तकदीर कहाँ? सिर्फ रसूल की उनसे बाते होती थी, बबुआ। ये बाते कुरान में लिखी है।"

"अच्छा दादा, क्या आपके रसूल साहव को भी दाढी थी ?"

"हाँ,—हाँ, थी। वडी खूवसूरत, लवी, सुनहली—अव भी उनकी दाढी के कुछ वाल मक्का में रखे है। हम अपने तीरथ में उन वालो के भी दर्शन करते ।"

"वडा होने पर जव मुझे दाढी होगी, मै भी दाढी रखाऊँगा, दादा ! खूव लवी दाढी।"

सुभानदादा ने मुझे उठाकर गोद में ले लिया , फिर कधे पर चढा कर इधर-उधर घुमाया। तरह-तरह की वातें सुनाई, कहानियाँ कही। मेरा मन वहलाकर वह फिर अपने काम में लग गये। मुझे मालूम होता था, काम और अल्लाह—ये ही दो चीजें ससार में उनके लिये सवसे प्यारी है। काम करते हुए अल्लाह को नही भूलते थे और अल्लाह से फुर्सत पाकर फिर झट काम में जुट जाना अपना पवित्र कर्त्तव्य समझते थे। और, काम और अल्लाह का यह सामजस्य उनके दिल में प्रेम की वह मदाकिनी वहाता रहता था, जिसमें मेरे ऐसे वच्चे भी वडे मजे में डुवकियाँ लगा सकते थे, चुभकियाँ ले सकते थे।

× × ×

नानी ने कहा—सवेरे नहा-खा लो, आज तुम्हे हुसैन साहव के पैक में जाना होगा। सुभान खाँ आते ही होगे !

जिन कितने देवताओ की मनौतीके वाद माँ ने मुझे प्राप्त किया था, उनमें एक हुसैन साहव भी थे। नौसाल की उम्र तक, जवतक उनेऊ नही हो गई थी, मुहर्रम के दिन मुसलमान वच्चो की तरह मुझे भी ताजिये के चारो ओर रगीन छडी लेकर कूदना पडा है और गले में गडे पहनने पडे है। मुहर्रम उन दिनो मेरे लिए कितनी खुशी का दिन था। नये कपडे पहनता, उछलता-कूदता, नए-नये चेहरे और तरह-तरह के खेल देखता,—धूम-धडक्क में किस तरह चार पहर गुजर जाते ! इस मुहर्रम के पीछे जो रोमाचकारी, हृदय को पिघलानेवाली, करुण रस से भरी दर्द-अगेज घटना छिपी है, उन दिनो उसकी खवर भी कहाँ थी ?

खैर, मै नहा-धोकर, पहन-ओढकर इतजार ही कर रहा था कि सुभानदादा पहुँच गये, मुझे कधे पर ले लिया और अपने गाँव में ले गये।

उनका घर क्या था—बच्चो का अड्डा बना हुआ था। पोते-पोतियो, नाती-नतिनो की भरमार थी उनके घर मे। मेरी ही उम्र के बहुत बच्चे! रगीन कपडो से सजे-धजे—सब मानो मेरे ही इतज़ार में! जब पहुँचा, सुभानदादा की बूढी बीवी ने मेरे गले मे एक बद्धी डाल दी, कमर में घटी बाँध दी, हाथ मे दो लाल छडियाँ दे दी और उन बच्चो के साथ मुझे लिये-दिये करबला की ओर चली। दिन भर, उछला, कूदा, तमाशे देखे, मिठाइयाँ उडाई और शाम को फिर सुभानदादा के कधे पर घर पहुँच गया।

ईद-बकरीद को न सुभानदादा हमे भूल सकते थे, न होली-दीवाली को हम उन्हे! होली के दिन नानी अपने हाथो से पूए, खीर और गोश्त परोस कर सुभानदादा को खिलाती। और, तब मै ही अपने हाथो से अबीर लेकर उनकी दाढी में मलता। एक बार जब उनकी दाढी रगीन बन गई थी, मुझे पुरानी बात याद आ गई। मैंने कहा—

"सुभानदादा, रसूल की दाढी भी तो ऐसी ही रगीन रही होगी?"

"उसपर अल्लाह ने ही रग दे रखा था बबुआ; अल्लाह की उनपर खास मेहरबानी थी। उनके-सा नसीबाँ हम मामूली इसानो को कहाँ?"

ऐसा कहकर, झट आँखें मूँद कर कुछ बुदबुदाने लगे—जैसे वह ध्यान में उन्हे देख रहे हो।

मै भी कुछ बडा हुआ, उधर दादा भी आखिर हज कर ही आए। अब मै बडा हो गया था, लेकिन उन्हे छुहारे की बात भूली नही थी। जब मै छुट्टी में शहर के स्कूल से लौटा, दादा यह अनुपम सौगात लेकर पहुँचे। इधर उनके घर की हालत भी अच्छी हो चली थी। दादा के पुण्य और लायक बेटो की मेहनत ने काफी पैसे इकट्ठे कर लिये थे। लेकिन उनमें वही विनम्रता और सज्जनता थी। आये, पहले की ही तरह शिष्टाचार निबाहा। फिर छुहारे निकाल कर मेरे हाथ में रख दिये—"बबुआ, यह आप के लिये खास अरब से लाया हूँ। याद है न, आपने इसकी फरमायश की थी।" उनके नयने आनदातिरेक मे हिल रहे थे।

छुहारे लिये, सिर चढ़ाया—खाहिश हुई, आज फिर मैं बच्चा हो पाता और उनके कधे पर लिपट कर उनकी सुफेद दाढी में, जो अब सचमुच नूरानी हो चली थी, उँगलियाँ घुसाकर उन्हे 'दादा, दादा' कहकर पुकार उठता! लेकिन, न मैं अब बच्चा हो सकता था, न जबान में वह मासूमियत और पवित्रता रह गई थी! अँगरेजी स्कूल के वातावरण ने अजीब अस्वाभाविकता हर बात में ला दी थी। पर हाँ, शायद एक चीज़ अब भी पवित्र रह गई थी। आँखो ने आँसू की छलकन से अपने को पवित्र कर चुपचाप ही उनके चरणो में श्रद्धाजलि चढ़ा दी!

× × ×

हज से लौटने के बाद सुभानदादा का ज्यादा वक्त नमाज़-बदगी में ही बीतता। दिन भर उनके हाथो में तसबीह के दाने घूमते और उनकी जबान अल्लाह की रट लगाये रहती। अपने जवार-भर में उनकी बुजुर्गी की धाक थी। बडे-बडे झगडो की पचायतो में दूर-दूर के हिंदू-मुसलमान उन्हे पच मुकर्रर करते। उनकी ईमानदारी और दयानतदारी की कुछ ऐसी ही धूम थी।

सुभानदादा का एक अरमान था, मस्जिद बनाने का। मेरे मामा का मदिर उन्होने ही बनाया था। उन दिनो वह साधारण राज थे। लेकिन, तो भी कहा करते—अल्लाह ने चाहा तो मैं भी एक मस्जिद ज़रूर बनवाऊँगा।

अल्लाह ने चाहा और वैसा दिन आया। उनकी मस्जिद भी तैयार हुई। गाँव के ही लायक एक छोटी-सी मस्जिद—लेकिन बडी ही खूबसूरत। दादा ने अपनी ज़िदगी-भर की अर्जित कला इसमे खर्च कर दी थी। हाथ में इतनी ताकत नही रह गई थी कि अब खुद कढनी या वसुली पकडें, लेकिन दिन भर बैठे-बैठे एक-एक ईंट की जुडाई पर ध्यान रखते और उसके भीतर-भीतर जो बेल-बूटे काढे गये थे, उनके सारे नक्शे उन्होने ही खीचे थे और उनमें से एक-एक का काढा जाना उनकी ही बारीक निगरानी में हुआ था!

मेरे मामा जी के बगीचे में शीशम, सखुए, कटहल आदि, इमारतो में काम आनेवाले, पेडो की भरमार थी। मस्जिद की सारी लकडी हमारे ही बगीचे से गई थी।

जिस दिन मस्जिद तैयार हुई थी, सुभानदादा ने जवारभर

के प्रतिष्ठित लोगो को न्योता दिया था। जुमा का दिन था। जितने मुसलमान थे सबने उसमें नमाज़ पढी थी। जितने हिंदू आये थे, उनके सत्कार के लिये दादा ने हिंदू हलवाई रखकर तरह तरह की मिठाइयाँ बनवाई थी, पान-लायची का प्रबध किया था। अब तक भी लोग उस मस्जिद उद्घाटन के दिन की दादा की मेहमानदारी भूले नही है।

× × ×

ज़माना बदला। मैं अब शहरो में ही ज्यादातर रहता। और, शहर आये–दिन हिंदू-मुस्लिम दगो के अखाडे बन जाते थे। हाँ, आये–दिन! देखियेगा, एक ही सडक पर हिंदू-मुसलमान चल रहे है, एक ही दुकान पर सौदे खरीद रहे है, एक ही सवारियो पर जानू-ब-जानू आ-जा रहे है, एक ही स्कूल में पढ रहे हैं, एक ही दफ्तर में काम कर रहे है, कि अचानक सबके सिर पर शैतान सवार हो गया। हल्ला, भगदड, मारपीट, खूनखरावी, आग-लगी—सारी खुराफातो की छूट! न घर महफूज़, न शरीर, न इज्जत! प्रेम, भाई-चारे और सहृदयता के स्थान पर घृणा, विरोध और नृशश हत्या का उल्लग नृत्य!

शहरो की यह बीमारी धीरे-धीरे देहात में घुसने लगी। गाय और बाजे के नाम पर तकरारे होने लगी। जो ज़िंदगी भर कसाई-खानो के लिए अपनी गाय बेचते रहे,, वे ही एक दिन किसी एक गाय के कटने के नाम सुनकर ही कितने इन्सानो के गले काटने को तैयार होने लगे! जिनके शादी-ब्याह परब-त्योहार बिना बाजे के नही होते, जो मुहर्रम की ग़मी के दिन भी बाजे-गाजो की धूम किये रहते, अब वे ही अपनी मस्जिद के सामने से गुज़रते हुए एक मिनट के बाजे पर खून की नदियाँ बहाने को उतारू हो जाते!

कुछ पडितो की बन आई, कुछ मुल्लाह की चलती बनी। सगठन और तजीम के नाम पर फूट और कलह के बीज बोये जाने लगे। लाठियाँ उछली, छुरे निकले। खोपडियाँ फूटी, अँतडियाँ बाहर आई। कितने नौजवान मरे—घर फुँके। बाकी बच गए खेत–खलिहान, सो अँगरेजी अदालत के खर्चे में पीछे कुर्क हुए।

खबर फैली, इस साल सुभानदादा के गाँव के मुसलमान भी कुर्बानी करेंगे। जवार में मुसलमान कम थे, लेकिन उनके जोश का क्या कहना? इधर हिंदुओ की जितनी गाय पर ममता न थी, उसने

ज्यादा अपनी तायदाद पर घमड था। तनातनी का बाजार गर्म! खबर यह भी फैली कि सुभानदादा की मस्जिद में ही कुर्बानी होगी।

"ऐं, सुभानदादा की मस्जिद में कुर्बानी? नही, ऐसा नही हो सकता!"

"अगर हुई, तो क्या होगा? हमारी नाक कट जायगी! लोग क्या कहेंगे—इतने हिंदू के रहते गो-माता के गले पर छुरी चली!"

"छुरी से गो-माता को बचाना है तो गोरागोरी के कसाईखाने पर हम धावा करे? और, अगर, सचमुच जोश है, तो चलिये मुज्जफरपुर, अँगरेजी फौज की छावनी पर ही धावा बोले। कसाईखाने में तो बूढी गाएँ कटती हैं, छावनी में तो मोटी-ताजी बाछियाँ ही काटी जाती हैं।"

"लेकिन वे तो हमारी आँखो से दूर हैं। देखते हुए मक्खी कैसे निगली जायगी?"

"माफ कीजियेगा, दूर-नजदीक की बात नही है। बात है हिम्मत की, ताकत की। छावनी में आप नही जाते हैं, इसलिये कि वहाँ सीधे तोप के मुँह में पडना होगा। यहाँ मुसलमान एक मुट्ठी हैं, इसलिये आप टूटने को उतावले है।"

"आप सुभान खाँ का पक्ष ले रहे है, दोस्ती निभाते है! धर्म से बढकर दोस्ती नही!"

कुछ नौजवानो को मेरे मामाजी की बाते ऐसी बुरी लगी कि सख्त-सुस्त कहते वहाँ से उठकर चल दिये। लेकिन कितना भी गुस्सा किया जाय, चीखा-चिल्लाया जाय—यह साफ बात थी कि मामा की बिना रजामदी के किसी बडी घटना के लिए किसी को पैर उठाने की हिम्मत नही हो सकती थी। उधर सुभानदादा के दरवाजे पर भी मुसलमानो की भीड है। न जाने दादा में कहाँ का जोश आ गया है, वह कडककर कह रहे हैं—

"गाय की कुर्बानी नही होगी! ये फालतू बातें सुनने को मैं तैयार नही हूँ। तुमलोग हमारी आँखो के सामने से हट जाओ।"

"क्यो नही होगी? क्या हम अपना मजहब डर के मारे छोड देंगे?"

"मै कहता हूँ, यह मज़हव नही है। मै हज से हो आया हूँ, कुरान मैंने पढी है। गाय की कुर्बानी लाजिमी नही है। अरब में लोग दुम्मे और ऊँट की कुर्बानी अमूमन करते है।"

"लेकिन हम गाय की ही कुर्बानी करे, तो वे रोकनेवाले कौन होते है? हमारे मज़हव मे वे दस्तदाजी क्यो करेगे?"

"उनकी बात उनसे पूछो—मै मुसलमान हूँ, कभी अल्लाह को नही भूला हूँ। मै मुसलमान की हैसियत से कहता हूँ, मै गाय की कुर्बानी न होने दूँगा, न होने दूँगा।"

दादा की समूची दाढी हिल रही थी, गुस्से से चेहरा लाल था, होठ फडक रहे थे, शरीर तक हिल रहा था। उनकी यह हालत देख, सभी चुप रहे। लेकिन एक नौजवान बोल उठा—

"आप बूढे है, आप अलग बैठिए, हम काफिरो से समझ लेंगे।"

दादा चीख उठे—

"कल्लू का बेटा, ज़बान सम्भालकर बोल। तू किन्हे काफिर कह रहा है? और मेरे बुढापे पर मत जा—मै मस्जिद में चल रहा हूँ। पहले मेरी कुर्बानी हो लेगी, तब गाय की कुर्बानी हो सकेगी।"

सुभानदादा वहाँ से उसी तनतने की हालत मे मस्जिद में आये। नमाज़ पढी। फिर तसबीह लेकर मस्जिद के दरवाजे की चौखट पर 'मेरी लाश पर ही कोई भीतर घुस सकता है।"—कहकर बैठ गये। उनकी आँखें मुँदी है, किंतु आँसुओ की झडी उनके गाल से होती, उनकी दाढी को भिगोती, अजस्र रूप मे गिरती जा रही है। हाथ में तसबीह के दाने हिल रहे हैं, और होठो पर ज़रा-ज़रा जुम्बिस है—नही तो उनका समूचा शरीर सगमरमर की मूर्त्ति-सा लग रहा है—निश्चल, निस्पंद। धीरे-धीरे मस्जिद के नज़दीक लोग इकठ्ठे होने लगे। पहले मुसलमान, फिर हिंदू भी। अब गाय की कुर्बानी का सवाल दादा की आँसुओ की धारा मे भँसकर न जाने कहाँ चला गया था! वह साक्षात् देवदूत-से दीख पडते थे! देवदूत—जिसके रोम-रोम से प्रेम और भाईचारे का सदेश निकलकर वायुमडल को व्याप्त कर रहा था।

× × ×

अभी, उस दिन मेरी रानी, मेरे दो वर्ष जेल में रह जाने के

बाद, इतने लंबे अर्से तक राह देखती-देखती, आखिर मुझसे मिलने गया सेण्ट्रल जेल में आई थी।

इतने दिनों की विछुडन के बाद, मिलने पर, जो सबसे पहली चीज उसने मेरे हाथों पर रखी, वे थे रेशम और कुछ सूत के अजीबो-गरीब ढग से लिपटे-लिपटाये डोरे, बद्धियाँ, गडे आदि। यह सूरज देवता के हैं, यह अनत देवता के, यह ग्राम देवता के, यों ही गिनते-गिनते आखिर में बोली—"ये हुसैन साहब के गडे हैं—आपको मेरी ही कसम, इन्हे जरूर ही पहन लीजिएगा।"

ये सब मेरी माँ की मन्नतों के अवशेष चिह्न हैं। माँ चली गई, पिताजी चले गये, रानी चार बच्चों की माँ बन चुकी है, मैं पिता बन चुका हूँ, लेकिन, तो भी ये मन्नतें अब भी निभाई जा रही हैं। रानी जानती है, मैं नास्तिक हूँ। इसलिये जब-जब इनके मौके आते हैं, खुद इन्हे मेरे गले में डाल देती है। आज इस जेल में जेल-कर्मचारियों और खुफिया-पुलिसों के सामने उसने ऐसा नहीं किया—लेकिन, कसम देने से नहीं चूकी। मैंने भी हँसकर, मानो, उसकी दिलजमई कर दी।

रानी चली गई, लेकिन वे गडे अब भी मेरे सूटकेस में सँजो-कर रखे हैं।

जब-जब सूटकेस खोलता हूँ और हुसैन साहब के उन गडों पर नजर पडती है, तब-तब दो अपूर्व तस्वीरें आँखों के सामने नाच जाती हैं—

पहली करबला की—

एक ओर सिर्फ बहत्तर आदमी हैं, जिनमें बच्चे और औरतें भी हैं। इस छोटी-सी जमात के सरदार हैं हजरत हुसैन साहब। इन्हे बार-बार आग्रह करके बुलाया गया था, कूफा की गद्दी पर बिठलाने के लिये! लेकिन गद्दी पर बिठने के बदले, आज उनके लिए एक चुल्लू पानी का मिलना भी मुहाल कर दिया गया है। सामने फुरात नदी बह रही है, लेकिन उसके घाट-घाट पर पहरे हैं, उन्हे पानी लेने नहीं दिया जा रहा है। कहा जाता है—दुराचारी, दुराग्रही यजीद की सत्ता कबूल करो, नहीं तो प्यासे तडप कर मरो।

बच्चे प्यास के मारे बिलला रहे हैं, उनकी माँ और बहनें

तडप रही हैं। हायरे, एक चुल्लू पानी!—मेरे लल्ला के कठ सूखे जा रहे है, उसकी साँस रुकी जा रही है! पानी, पानी—एक चुल्लू पानी!

पानी की तो नदी वह रही है और तुम्हें इज्जत और दौलत भी कम नही बख्शी जायगी—क्योकि तुम खुद रसूल के नाती जो हो। लेकिन; शर्त्त एक है—यज़ीद के हाथ पर बैत करो।

यज़ीद के हाथ पर बैत? दुराचारी, दुराग्रही यज़ीद की सत्ता कबूल कर ले और रसूल का नवाशा? हो नही सकता। हम एक चूल्लू पानी में डूब मरना पसद करेंगे, लेकिन यह नीच काम रसूल के नाती से नही होगा!

लेकिन, बच्चो के लिये तो पानी लाना ही है! उन्हे यो जीते-जी तड़प कर मरने नही दिया जा सकता!

एक ओर बहत्तर आदमी, जिनमें बच्चे और स्त्रियाँ भी। दूसरी ओर दुराचारी यज़ीद की अपार सजी-सजाई फौज। लडाई होती है, हज़रत हुसैन और उनका पूरा काफिला उस करबला के मैदान में शहादत पाता है। शहीदो के रक्त से उस सहरा के रजकण लाल हो उठते है, बच्चो की तडप और अबलाओ की चीख से वातावरण थर्रा उठता है। इतनी बडी दर्दनाक घटना ससार के इतिहास में मिलना मुश्किल है। मुहर्रम उसी दिन का करुण स्मारक है। ससार के कोने-कोने में यह स्मारक हर मुसलमान मनाता है। भाईचारा बढने पर हिन्दुओ ने भी इसे अपना त्योहार बना लिया था, जो सब तरह ही योग्य था।

और, दूसरी तस्वीर सुभानदादा की—

जिनके कधे पर चढकर मैं मुहर्रम देखने जाया करता था।

वह चौडी पेशानी, वह सुफेद दाढी, वे ममताभरी आँखें, वे शहद टपकानेवाले होठ, उनका नूरानी चेहरा! जिनकी जवानी अल्लाह और काम-काज के बीच बराबर हिस्से में बँटी थी, जिनका बुढापा अल्लाह से ओत-प्रोत था। जिनके दिमाग में आला खयाल थे और जिनके हृदय में प्रेम की धारा लहराती थी, वह प्रेम की धारा—जो अपने-पराये सबको समान रूप से शीतल करती और सीचती है!

मेरा सिर सिज्दे में झुका है—करबला के शहीद के सामने!
मैं सप्रेम नमस्कार करता हूँ—अपने प्यारे सुभानदादा को!

बुधिया

एक छोटी-सी पठिया फुदकती हुई आकर चमेली की ताज़ा, नरम-नरम पत्तियों को तावडतोड नोचने और चवाने लगी। उस दिन तक मुझमें वह कलात्मक प्रवृत्ति नही जगी थी कि उस नन्हे खूवसूरत जानवर का वह फुदकना, अपने लवे कानो को फट-फटाते हुए पत्तियो का वह नोचना, फिर चौकन्नी आँखो से इधर-उधर देखते हुए लगातार मुँह चलाना और जव-तव, शायद माँ की याद मे, में-में चिल्ला उठना—मै विस्मय-विमुग्ध होकर देखता-सुनता रहता। उस दिन तो सवमे वडी ममता थी उस चमेली पर, जिमकी कलम मै दूर के गाँव से लाया था, जिमे मैने अपने हाथो रोपा और मीचा था और जिसकी एक-एक पत्ती निकलते देखकर मै फूला नही समाता था। इस छोटी-सी दुष्ट पठिया ने सव सत्यानाश में मिला

दिया—मै गुस्से में चूर उसे मारने दौडा। वह हिरन के वच्चे-सी छलाँग लेते भागी! मैं पीछे लगा—

मत मारिये वावू!—यह वुधिया थी। वुधिया, एक छोटी-सी वच्ची। सात-आठ साल से ज्यादा की क्या होगी! कमर में एकरगे की खँडुकी लपेटे, जिसमे कितने पैवद लगे थे और जो मुश्किल से उसके घुटने के नीचे पहुँचती थी। समूचा शरीर नग-धडग, गर्द-गुवार से भरा। साँवले चेहरे पर काले वालो की लपटें विखरी, जिनमें धूल तो साफ थी और जूएँ भी जरूर रही होगी। एक नाक से पीला नेटा निकल रहा, जिसे वह वार-वार सुडकने की कोशिश करती। उसकी वोली सुन, और शायद यह सूरत देखकर भी, इच्छा हुई, एक थप्पड अभी उसके गाल पर जड दूँ, कि उसके पैर के नीचे जो नज़र पडी, तो ध्यान उस ओर वँट गया और मेरा लडकपन का मन वही जा उलझा।

अरे, तूने यह क्या वना रखा है?—मै नज़दीक वढकर देखने लगा। देखा, निकट के पोखरे से गीली-चिकनी मिट्टी लाकर वह तरह-तरह के खिलौने वनाए हुई है। खेत से सरसो, चना-मटर वगैरह के फूल ले आकर उन खिलौनो को खूव सजा रखा है उसने। खिलौनो की खास शक्ले तो थी नही, हाँ, आदमी के-से आकार, जो रग-विरगे फूलो से सजे होने के कारण ज़रूर ही भले दीखते थे। मैंने पूछा—यह क्या है? वह कुछ शरमाई।

आप मारियेगा नही न, तो वताऊँ!

आज पीटता जरूर, लेकिन माफ कर दिया। वह मुस्करा पडी। वैठ गई। वैठिए न! उस गदगी में मैं क्यो वैठने लगा, झुक कर देखने लगा उसने कहना शुरू किया—

यह है दुलहा—सिर पर मौर। सरसो के फूल की ओर इशारा करती—वसती मौर। यह दुलहन—कैसी भली चुँदरी, मटर-चने के फूलो की। इनकी होगी शादी। खूव वजेंगे वाजे। दो-तीन वार उसने पेट पीटा, फिर मुँह से सीटी दी—ढोल भी, शहनाई भी! यह है कोहवर-घर —धूल से चौकोर घेरकर वनाया। यह है फूलसेज —आम के हरे पत्तो पर कुछ फूल विखरे। इस पर सोएँगे दोनो। और मैं गाऊँगी गीत—

वह कुछ गुनगुनाने लगी। गाती, झूमती। कुछ देर तल्लीन मैं देखा सुना किया। फिर मेरा ध्यान अपनी चमेली की ओर गया।

दौडा। एक-एक पत्ती गिनता। अफसोस करता। पठिया को जिन्दा चबाने की कसमे खाता। बुधिया को गालियाँ देता

× × ×

मालिक, जरा घास मे हाथ लगा दीजिए न?

सिर नीचा किए, किसी बात पर मन-ही-मन तर्क-वितर्क करता, मैं गाँव से उत्तर की उस सडक पर शाम को हवाखोरी कर रहा था कि यह आवाज़ सुन, सिर उठाकर देखा।

झुटपुटा हो चला था। सडक के नीचे, खेत में, एक युवती-सी खडी मालूम हुई। घास का गट्ठर उसके पैर के नीचे, बगल मे, पडा था।

मैं झल्ला उठा। उसकी शोखी पर क्रोध आया। मैं अब शहरी आदमी हूँ। साफ कपडे पहनता। गँवई के लोगो की गदगी से दूर रहने की कोशिश करता। फिर, मैं घसवाहा, चरवाहा थोडे हूँ, जो घास के गट्ठर उठाता फिरूँ? गाँव में ऐसा कौन है जो मुझसे ऐसा कहने की जुर्रत करे? लेकिन, देखिए इसे, जिसने

उठा दीजिये न?

मैंने घूरकर उसके चेहरे को देखा। आकृति और आवाज़ मे मे तारतम्य बिठलाया। अरे, यह तो बुधिया है! जवान हो गई? इतनी जवान इतना जल्द?

इधर-उधर देखा, कोई नही। शाम हो रही है, बेचारी को कौन उठा देगा? द्रवीभूत हो मैंने घास के गट्ठर में हाथ लगा दिये। वह गट्ठर लिये झूमती चली गई।

उसी समय एक ठहाका सुनाई पडा और थोडी देर मे जगदीश मेरे नज़दीक पहुँच चुका था। आखिर आपको भी इसने फँसाया! —जगदीश की आँखो में शरारत थी, आवाज़ में व्यगय। फिर उसने मानो, बुधिया-पुराण कहना शुरू किया—

अब बुधिया पैवदवाली बुधिया नही है। अब उसकी चूनर का रग कभी मलिन नही होता। उसकी चोली सिवाईपट्टी का दरज़ी सीता है। माना, वह रोज घास को आती-जाती है, लेकिन उसके हाथ में ठेले की क्या बात, आप घिस्से भी नही पायेंगे। रग वही सावला है, लेकिन उसमे गडहे के सडे पानी की मुर्दनी नही है, कालिंदी का कलकल-छलछल है, जिसके कूल पर कितने गोपाल बशी टेरते, कितने ही नदलाल रासलीला का स्वप्न देखते। बुधिया जिस सरेह मे निकल

जाती, जिदगी तरगें लेती। उसके वालो में चमेली का तेल चपचप करता है, उसकी माँग में टकही टिकुली चमचम करती है। किसी वृन्दावन में एक थे गोपाल, हज़ार थी गोपियाँ। यहाँ एक है गोपी और हज़ार गोपाल। इन गोपालो को एक ही नाथ में नाथकर नचाने में वुधिया को जो मज़ा आता, वह उस गोपाल को सहस्रफण काली के नाथने और उसके फण पर नाचने में भी कहाँ मिला होगा? मालूम होता, द्वापर का वदला राधारानी इस युग में वुधिया की मारफत पुरुप-जाति से चुका रही—वह तडपती रही और यह तडपाती है।

उफ, अनर्थ!—मेरा सदाचार-प्रवण हृदय चिल्ला रहा था और मैं सिर नीचा किये उस अँधेरे में घर की ओर लौट रहा था, जगदीश ने दूसरी राह पकडी थी। थोडी दूर जाने पर, गाँव के नज़दीक पहुँचते-पहुँचते, मुझे ऐसा लगा कि मेरी वगल से जैसे शरीर छूता हुआ, कोई सत्र से निकल गया। मेरी गर्दन आप-से-आप पीछे मुडी।

माफ कीजिये, यह दूसरा कसूर हुआ—वह ठिठक कर खडी हुई वोली। वह वुधिया थी। मैं जल उठा—वदमाश, वदचलन! सुनकर, सहमने-सकुचाने के वदले, वह ठठाकर हँस पडी और निधडक नज़दीक आकर, कहने लगी—

वावू, याद है, मेरी पठिया चमेली चर गई थी?

अँधेरे में भी वतीसी चमक उठी।

वदमाश भाग चल!

निस्सदेह उस समय मेरा चेहरा लाल अगार वन रहा होगा।

और, वह दुल्हा, वह दुल्हन, वह कोहवर, वह फूल-सेज, और वह गीत! गीत सुनियेगा वावू—

सजनी चलल्हि पिउ-घर ना,

जाइतहि लागु परम डर ना,

वह गाते-गाते भागी—हँसती इठलाती। उफ, कैसी वेशर्म, वेहाया मैं क्या-क्या न वडवडाया किया, और दूर-दूर से उसके ठहाके की आवाज़ आ रही थी!

× × ×

गेहूँ की कटनी हो रही थी। मेरे भाई ने कहा—भैया, आज मजदूर ज्यादा होंगे, लूट लेंगे। ज़रा खेत चलियेगा? बस, आपको सिर्फ खडा भर रहना है, काम तो आप-आप होगा।

खून मे जो कही वची-वचाई किसानी वृत्ति है, उसने नये काम के नये अनुभव के कौतुहल से मिलकर, मुझे खेत मे ला खडा किया।

एक पहर रात से ही, जिसमे गेहूँ की पकी वालियाँ डठल से ही झड न जाये, चाँदनी-चाँदनी मे जो कटनी हो रही थी, वह खतम हो चली थी। वोझे वाँधे जा रहे थे। मजदूर वोझे वाँधते, उनकी स्त्रियाँ और वच्चे गिरी हुई वालियो को अपने लिये चुनते। गिरी हुई वालियो के वहाने कही पसही को ही न चुन ले, इसीलिए मेरी यह तैनाती हुई थी।

मै एक जगह खडा, चौकसी से, अपनी ड्यूटी दे रहा था, लेकिन खेत के एक कोने पर, मुझसे काफी दूर एक मजदूर के पीछे एक अधेड स्त्री और उसके कई वच्चे तावड-तोड वाल चुन रहे और, मै कहूँ, कुछ फाउल-प्ले कर रहे थे।

ऐं, कौन औरत है?—तू क्या कर रही है?

मेरी ऊँची आवाज़ को औरत ने, जैसे सुनकर भी, नही सुना। हाँ, उसका मर्द शायद उसे डाँट रहा था, ऐसा लगा।

एक वार—दो वार—तीन वार! अपनी अवज्ञा देख, गुस्से मे चूर, मै उस ओर वढा। मुझे उस ओर वढते देख उसके चारो वच्चे, जो छ वर्ष की उम्र में अन्दर के ही होंगे, उस स्त्री के समीप आ गये। छोटे ने, जो डेढ वर्ष का होगा, गुडुककर उसके पैर पकड लिये। कुछ अलग ही से मैंने हाँटा—

तू क्या कर रही है, रे?

हाथ से चुनने का काम जारी रखते हुए ही, झुके-झुके, उसने मुँह फेरकर मेरी ओर देखा, और वोली—सलाम वावू!

ऐं, यह कौन? अरे वुधिया? यह वही वुधिया है, जो कभी खँडुकी पहने थी? कभी जिसकी चूनर नही मलिन होती थी? उफ, यह क्या हुआ? उसका वह वचपन; उसकी वह जवानी! और यह

हाँ, वुढापा ही तो। फटा कपडा। चोली का नाम नही। वाल विखरे, चेहरा सूखा। गालो के गड्ढे, आँखो के कोटर। और-नो-और

—जो कभी अपनी गोलाई, गठन और उठान से नौजवानो को पागल बनाते, उसके वे दोनो जवानी के फूल, जब वह झुकी बाल चुन रही है, बकरी के थन-से लटक रहे—निर्जीव, निस्पद !

बुधिया !

हाँ बाबू !

मुँह फेर कर उसने मेरी ओर सूखी मुस्कुराहट मे देखा और अपने काम में लगी रही।

तबतक उसका 'आदमी' बोझे बाँध चुका था। उसने पुकारा—जरा इधर आ, हाथ लगा दे।

बुधिया बाल चुनना छोड तनकर खडी हुई और मेरी ओर देख, फिर एक हल्की मुस्कुराहट ले, उस ओर बढी।

मैंने उसके तनकर खडा होते ही, देखा, उसका पेट बाहर निकला है, पैर उठ नही रहे है। ओह—यह गर्भवती है ! तू ठहर, मै बोझा उठाए देता हूँ !—मैंने कहा ?

ना बाबू, आप से बोझ उठाने को नही कहूँगी ! आप नाराज हो जाते हैं !

उसके आगे के दो दाँत, अजीब करुणा बरसाते, चमक पडे।

मुझे धक-सा लगा। पुरानी बात याद आ गई। वह सध्या, वह घास का गट्ठर, बुधिया का निवेदन, जगदीश का व्यग्य, मेरी बौखलाहट, उसका पागलपन ! उसी समय उसका छोटा बच्चा रो उठा। वह उसकी ओर लपकी और मै सीधे उसके आदमी के पास पहुँचा। बोझा उठा दिया। वह हट्टा-कट्टा जवान, बोझा लेता, झूमता चलता बना। इधर बच्चे के मुँह में सूखा स्तन देती, पुचकारती, दुलारती, हलराती, बुधिया बोली —

बाबू, आपके कै बच्चे है ? ये बडे दुष्ट होते हैं बाबू ! देह बरबाद करके भी इन्हें चैन नही, ये तग कर मारते हैं।

बाकी तीन बच्चे भी उससे सटे खडे थे। एक की देह पर हाथ फेरती, एक की पीठ ठोकती, एक पर आँखो से ही प्यार उँडेलती, गोद के बच्चे को थपथपाती, इस स्थिति में ही क्या-क्या

न मुझसे वकती रही। मैं एकटक उसकी ओर देखता रहा। आँखे उसकी ओर देखती, दिमाग अपना काम किये जाता—

हाँ, वरसात वीत गई। वाढ खतम हो गई। अव नदी अपनी धारा में है; शात गति से वहती। न वाढ है, न हाहाकार। कीचड़ और खर-पात का नाम-निशान नही। शात, स्निग्ध, गगा!

मेरे सामने महान् मातृत्व है—वदनीय, अर्चनीय!